बिहारी काव्य में चित्रांकन के आयाम

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ की एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक
डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय

शोधार्थी
दीपाली
अनुक्रमांक : 10201

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग
भाषा, भाषाविज्ञान, संस्कृति एवं विरासत स्कूल
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़-123031

(2017-18)

घोषणा-पत्र

मैं **दीपाली** यह घोषणा करती हूँ कि डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय के शोध निर्देशन में '**बिहारी काव्य में चित्रांकन के आयाम**' विषय पर **एम. फिल. (हिंदी)** की उपाधि प्राप्ति के लिए लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा यह लघु शोध-प्रबंध पूर्णत: मौलिक एवं शोधपरक है। मेरी जानकारी में इससे पूर्व हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध कार्य नही हुआ है। इस लघु शोध-प्रबंध के लेखन में समस्त संदर्भो का यथास्थान उल्लेख किया गया है।

शोधार्थी

(दीपाली)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री **दीपाली** ने मेरे निर्देशन में **एम. फिल. (हिंदी)** की उपाधि हेतु **'बिहारी काव्य में चित्रांकन के आयाम'** विषय पर शोध कार्य किया है। यह शोध कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है।

मैं इस लघु शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध-निर्देशक

(डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय)

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़।

अनुक्रमणिका

भूमिका
i-iii

प्रथम अध्याय : बिहारी : युग, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
1-33

द्वितीय अध्याय : चित्रांकन : अर्थ, स्वरूप एवं शैलियाँ
34-86

तृतीय अध्याय : बिहारी काव्य में चित्रांकन के आयाम
87-220

उपसंहार
221-224

संदर्भ ग्रंथ सूची
225-229

परिशिष्ट

प्रथम अध्याय

बिहारी : युग, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कविवर बिहारी रीतिकालीन कविता में कम लिखकर अधिक ख्याति अर्जित करने वाले कवियों में से एक हैं। रीतिकालीन कविता का समय हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक स्वीकार किया जाता है। इस 'रीतिकाल' नाम में 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की 'पद-रचना' या परिपाटी का सूचक है। इस युग में रीतिकालीन कवियों ने ऐसी विशिष्ट प्रणाली को दृष्टिगत रखते हुए काव्य रचना की जिसमें सर्वप्रथम कवि आचार्य धर्म का निर्वाह करते हुए काव्य रचना की रीति या लक्षण प्रस्तुत करते थे और फिर उसके अनुरूप ही काव्यगत उदाहरणों की रचना करते थे। इस प्रकार काव्य रचना में लक्षण बताकर उदाहरण देने की एक परम्परा सी चल गयी थी। इन उदाहरणों में श्रृंगारी अधिक होने के कारण अधिकांश कवियों ने अलंकार, रस, नायक-नायिका भेद, ध्वनि, गुण, दोष आदि के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत कर कविता करने की ऐसी रीति डाल दी जिसका पालन दौ सौ वर्षों तक किया जाता रहा। इस विशिष्ट काव्य रीति के पालन एवं रीति काव्य सृजन के आधिक्य के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे "रीतिकाल"[1] नाम दिया। रीतिकालीन की इन प्रवृत्तियों के कारण ही मिश्रबन्धु इसे "अलंकृत काल"[2] तथा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र "श्रृंगारकाल"[3] कहते हैं।

लगभग दो सौ वर्ष का यह कालखंड ऐतिहासिक दृष्टि से मुगल बादशाहों के राजनैतिक वैभव तथा उत्कर्ष से उनके पतन तक की कहानी है। भक्ति काल के बाद का यह युग अशांति और अव्यवस्था का युग रहा है। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाह्य आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठो एवं सिखों के आक्रमण कम्पनी शासन की

राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के कारण इस युग के हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों में अशांति, अव्यवस्था व बिखराव का वातावरण बना रहा।

रीतिकालीन साहित्य में आकर काव्य का रूप भक्ति से श्रृंगार की ओर हो जाता है तथा उस श्रृंगार के वैविध्य सम्पन्न वर्णन पर अनेक आक्षेप व आरोप लगाकर उसे घोर श्रृंगारी भी कहा गया। परन्तु इस युग के कवियों के घोर श्रृंगारी होने, उन्हें श्रृंगारी काव्य सृजन की प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलने आदि में किन कारणों का योगदान रहा ऐसे अनेक प्रश्नों पर विचार करने पर इसका उत्तर सम्भवत: यह युग, इसमें होने वाली उथल-पुथल व तत्कालीन परिवेश है जिसका प्रभाव साहित्यकारों पर पड़ना स्वभाविक ही है।

रीतिकाल का यह समाज सामन्तवादी पद्धति का समाज था जिसमें उच्च वर्ग के राजाओं तथा सामंतों का जीवन वैभव का जीवन था। पुष्प, इत्र, गंध, फव्वारे, उद्यान, रमणीय-विहार स्थल राजाओं व सामंतों को जहां एक और तृप्ति प्रदान करते थे तो दूसरी और सुरा-सुराही और सुंदरी जैसी विलास सामग्रियों के लोभवश वे नैतिक चेतना से विमुख होते जा रहे थे। आर्थिक मोह तथा कला-संरक्षण के भाव से कवि तथा कलाकार दरबारी बन गये जिससे कविता और कला भी दरबारी बनाते चले गये। काव्य रचना राजाओं की रुचि एवं इच्छा के अनुरूप ही होने लगी थी। राजाओं की वासना तृप्ति ने कविता का उद्देश्य और स्वरूप भी बदल डाला। इसी दरबाराश्रित काव्य रचना होने से आचार्य शुक्ल जी के मत से, "श्रृंगार-वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।।"[4] परिणामत: संस्कृत लक्षणों को ध्यान में रखकर कवियों ने आचार्यत्व धर्म का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथो का निर्माण भी करने लगे। इस युग में कुछ रीति-

इतर काव्य रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें भक्तिपरक, नीतिपरक, वीरकाव्य परक, प्रकृति परक रचनाएं भी हैं परन्तु अत्यंत गौण रूप में, क्योंकि मुख्य रूप से तो इस युग में श्रृंगार ही अधिक मुखर रहा है।

अतः रीतिकालीन परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधार-शिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ यह तो स्पष्ट ही है। मुगल शासकों के प्रभाव स्वरूप फ़ारसी भाषा और साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में इस काव्य पर पड़ा है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परम्परा में आचार्य भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के सभी आचार्यों तथा उनके रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यग्रन्थों में देखा जा सकता है। अलंकार-निरूपण, रस-विवेचन, नायक नायिका भेद तथा नख-शिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की प्रेरणा से ही है।

विद्धानों ने रीति परम्परा को स्पष्टत: अपनाने, काव्य में रीति के प्रत्यक्ष रूप में पालन करने तथा रीति से सर्वथा मुक्त रहते हुए भी रस दृष्टि से संयुक्त रचना के आधार पर रीतिकालीन काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया है-

रीतिबद्ध काव्यधारा :

रीति परम्परा में बंधकर प्रमुख रूप से लक्षण-ग्रंथ लिख उन्हें स्पष्ट करने के लिए उदाहरण स्वरुप काव्य की रचना करने वाले कवियों को रीतिबद्ध काव्य धारा में गिना जाता है। जैसे चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, पद्माकर।

रीतिसिद्ध काव्यधारा :

इसमें वे कवि है जिन्होंने लक्षण बताने वाले ग्रंथ नहीं लिखे लेकिन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परम्परा की मान्यताओं का अपने काव्य में प्रयोग किया तथा काव्य सृजन के क्षणों में उनका पूर्ण ध्यान रखा, जैसे- बिहारी।

रीतिमुक्त काव्यधारा :

इस काव्यधारा में वे कवि है जिन्होंने लक्षण व रीति की परम्परा से पूर्ण रूप में स्वतंत्र होकर विशुद्ध श्रृंगार की अनुभूतिपरक काव्य की रचना की। जैसे- घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर।

इन्हीं रीतिकालीन काव्यधारा के कवियों में कवि बिहारी रीतिसिद्ध काव्यधारा के ऐसे एकमात्र कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा के बल पर इस स्वतंत्र काव्यधारा का निर्माण कर लिया।

1.1 : बिहारी का युग :

कोई भी कवि जिस समय के समाज और वातावरण में जन्म लेता है, बड़ा होता है वह उस देश, समाज व वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अपनी विशिष्ट अनुभव शक्ति व चेतना के अनुसार कम या ज्यादा कवि पर उस युगीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसलिए एक सजग कलाकार अपने युग की परिस्थितियों की उपेक्षा कर साहित्य सृजन नहीं कर सकता। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में, "सच्चे कवि में लोक निरिक्षण की प्रवृत्तियां उस पर जाने या अनजाने अपनी छाप लगा ही देती हैं।.... जो कवि समाज का सच्चा

प्रतिनिधित्व कर सकता है वह चाहे लोकनायक हो या ना हो, साहित्य के क्षेत्र में नूतन पथ प्रशस्त करे या न करे; महान अवश्य होता है।"[5] बिहारी ऐसे ही महाकवि थे। वह युग में और युग उनमें व्याप्त था। प्राचीन परम्पराओं के साथ समसामायिक परिस्थितियों का भी उनकी रचनाओं में ऐसा समन्वित समावेश हुआ है कि वह सूक्ष्म बुद्धि व्यवहार का विषय बन गया है। चूँकि 'साहित्य समाज का दर्पण' अर्थात् प्रतिबिम्बन होता है, यह कथन सार्वभौम कलाकारों पर सत्य उतरता है और इसलिए बिहारी का साहित्य भी इस कथन का अपवाद नहीं है, अत: उनके कवि कर्म के मर्म को समझने के लिए उनके युग विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा कलात्मक परिस्थितियों पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

राजनीतिक दृष्टि से बिहारी के युग में अकबर का शासन था। इस समय सर्वत्र, शान्ति, सुख-समृद्धि और वैभव व्याप्त था। बिहारी का जीवन मुख्यतः शाहजहाँ के शासन-काल से सम्बन्धित है। परन्तु बचपन के कुछ वर्ष उन्होंने अकबर के समय में तथा यौवनावस्था के प्रारम्भिक वर्ष जहाँगीर के शासन काल में भी व्यतीत किये थे, "अकबर ने देश में शासन व्यवस्था को सुगठित किया था, उसके जीवन की विषमताओं ने उसे व्यवहारिक धरातल पर लाकर उदार और सहिष्णु बनाया था, अत: उसने अपने जीवन काल में व्यवहारिक नीति को अपनाकर हिन्दू-यवन मैत्री का वातावरण प्रस्तुत किया।..... दरबार का शाही वातावरण, वैभव-प्रदर्शन, चमत्कार और विलास से परिपूर्ण होना यह उस काल की विशेषता थी। जनता भी इस परिस्थिति से परिचित थी, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी सामन्ती वातावरण और उसकी विशेषताओं से आकृष्ट थी। सम्पूर्ण देश में वीरता दिखाना, शानशौकत करना, कलाकारों - नर्तको-नर्तकियों को आश्रय देना प्रचलित था। यह परिस्थितियां जहाँगीर और शाहजहाँ तक पूर्ण अविकल रूप में मिलती हैं, और इस युग में मिश्रित समस्त साहित्य में

परिलक्षित होती हैं।"[6] जहाँगीर ने अपने शासन काल में जो विस्तार किया शाहजहाँ ने उसकी अत्यधिक वृद्धि कर उत्तरी भारत के साथ साथ दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा तथा उत्तर-पश्चिम में सिंध से असम, अफगान प्रदेश तक अपना साम्राज्य स्थापित किया। इस समय तक मुगल शासन का वैभव चारों और फ़ैल चुका था। गुरुदेव नारायण की भाषा में, "जहाँगीर और शाहजहाँ का शासनकाल मुगलकालीन इतिहास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण वातावरण, सशक्त शासन व्यवस्था, कला और साहित्य की सुनिश्चित उन्नति के कारण यह काल स्वर्ण-युग के नाम से अभिहित किया जाता है।"[7] परिवर्तन का शाश्वत चक्र निरंतर चलता रहता है जिसने मुगल शासक के वैभव को पलटना शुरू कर दिया जिससे वैभव विलास के शाहजहाँ के दिन अधिक नहीं रहे। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत पर बाह्य आक्रमणकारी हमलों के प्रभाव से उत्पन्न विषम परिस्थितियों में संवत 1714 में शाहजाहाँ बीमार पड़ गया। फिर औरंगजेब द्वारा राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा से अपने पिता शाहजहाँ को बंदी बनाना, अपने भाइयों का कत्ल करवाना और सभी के प्रति अविश्वासी दृष्टि सर्वविदित ही है। यह दौर राजनीतिक उठापटक से भरा हुआ था। औरंगजेब ने राजनीतिक सख्ती को कुछेक धार्मिक मामलों पर लागू कर दिया। इन कारणों से असंतोष और राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण कायम हो गया।

बिहारी राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे इसलिए उन्होंने राजाओं के वैभव और विलास को देखा था। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव बिहारी पर भी पड़ा था जो उनके साहित्य में क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप मिलता है। बिहारी की स्वयं अपनी भी कुछ राजनीतिक एवं प्रशासनिक मान्यातएं थी जिसे अन्योक्ति के रूप में उन्होंने यदा-कदा अभिव्यक्त भी किया है।

सामाजिक दृष्टि से यह घोर पतन का युग था। समाज में सामन्तवादी शक्ति अधिक प्रभावशील होने के कारण उसके सभी दोष का असर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सामान्य लोगों पर पड़ रहा था। इस सामन्तवादी व्यवस्था का केंद्र बिंदु बादशाह या उसके बाद ओहदे अनुसार मनसबदार, अमीर, उमराव व अन्य कर्मचारी थे जो अपने से ऊपर वालों को प्रसन्न रखना ही अपना कर्तव्य मानते थे और नीचे के लोगों को सम्पत्ति मात्र समझ उनका शोषण करते थे। शासित वर्ग में एक ओर श्रमजीवी और कृषक थे तथा दूसरी ओर सेठ साहूकार, दुकानदार और व्यापारी थे। शासक वर्ग इन दोनों से ही कर के रूप में अपनी आय प्राप्त करता था जबकि यह दूसरा वर्ग सेठ, साहूकार आदि श्रमिक और कृषिकों की कमाई को विभिन्न प्रकार से हड़प कर अपनी जीविका कमाते थे। अर्थात् हर ऊँचा वर्ग निचले वर्ग का शोषक था। इस प्रकार यह कृषक व श्रमजीवी वर्ग सभी ओर से शोषित था। सेनाओं के लगातार युद्ध, आवागमन, अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण भी इन्हें कृषि की भारी हानि वहन करनी पड़ती थी जिसके फलस्वरूप इन्हें किसी न किसी के बेगार भी करनी पड़ती थी। अत: इस युग में गरीबों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी और शासक वर्ग बिना किसी श्रम के ही सम्पन्न था, "जनसाधारण की चिकित्सा, शिक्षा, सम्पति-रक्षा आदि का भी इस काल में कोई प्रबंध न था। ऐसी शोचनीय अवस्था में यदि लोग भाग्यवादी अथवा नैतिक मूल्यों से रहित थे तो, कोई आश्चर्य की बात नहीं। कार्य-सिद्धि के लिए उत्कोच लेना-देना तो साधारण बात थी ही, विलासता भी इसी कारण बढ़ गयी थी।"[8]

नारी को अपनी सम्पति समझ उसका भोग करना इस समय में जीवन का मूल मन्त्र होने लगा था। विलास के नित नए उपकरणों की खोज कर उनका संग्रह तथा सुरा-सुराही की साधना में ही लगा रहना इन सामंतवादियों का नित्य कर्म बन चुका था। किसी भी कन्या का अपरहण इनके लिए सामान्य बात हो गयी थी कदाचित इसलिए ही लड़कियों के अल्पायु में

विवाह से समाज में बाल विवाह जैसी कुरीति को प्रश्रय मिला साथ ही बहु-विवाह, सती प्रथा, स्त्रियों की पर्दा प्रथा, जनसामान्य का अंधविश्वास, रुढ़िवादिता आदि कई प्रकार के सामाजिक दोष अपने पैर पसार रहे थे जिनका वर्णन हमें बिहारी काव्य में भी मिलता है, यथा

अंधविश्वासी, कर्मकांड की प्रवृत्ति :

"होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि - अग्नि की ज्वाल।।"[9]

बाह्ययाडम्बर :

"जपमाला, छापै , तिलक सरै न एकौ कामु।
मन - काँचे नाचै वृथा, साँचे राँचे रामु।।"[10]

शासन के सर्वाच्च स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार का भी जनसाधारण के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। उच्च आदर्श और जीवन मूल्य विस्मृत होकर स्वार्थ सिद्धि ऊपर उठ चुकी थी। धनाधिक्य ने सभ्रांत वर्ग को विलासी और दुराग्रही बना दिया था। यही कारण है कि कई कवि जिस काव्य का सृजन कर रहे थे वह जनसामान्य के हितों से परे था। कला, संस्कृति, व्यापार, सामाजिक मापदंड, आचार-विचार सभी संकटो से गुजर रहे थे। अत: सामाजिक जीवन निरंतर हास की ओर उन्मुख था। दुराचार, अनाचार और व्याभिचार के इस युग में सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से बिगड़ गयी थी। नैतिक मूल्यों का पतन धर्म की अवनति का घोतक होता है सामाजिक अव्यवस्था और नैतिक मूल्यों के गिरने से इस समय धर्म की भारी दुर्गति हुई। शासक वर्ग अपने भोग विलास में पूर्ण रूप से मग्न था, अंधविश्वास और बाह्याडम्बर की वृद्धि के परिणामस्वरूप धर्म पतनोन्मुखी हो चला था। हिन्दू मंदिरों में भी

मठों की तरह दासी की मान्यता प्रचलित होने लगी थी जिससे धर्म के क्षेत्र में कामुकता और विलासिता ने जन्म ले लिया। इसी से पवित्र धार्मिक स्थान व्याभिचार के अड्डे बन गए थे। डॉ. ईश्वर दत्त शील के अनुसार, "मठ और मंदिर देव दासियों की पायलों और नूपुरों की रुनझुन से छन-छन गूँजते रहते थे।"[11] मुसलमान धर्म के राजधर्म होने के कारण औरंगजेब के शासनकाल तक हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार भी बढ़ने लगे थे जिससे हिन्दू-मुसलमानों का आपसी सौहार्द भी घृणा में बदलता जा रहा था। इस प्रकार धर्म की दशा इस युग में अव्यवस्थित और समृद्ध के विपरीत विपन्न थी। उसमें पाखंड, व्याभिचार और धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था।

सांस्कृतिक दृष्टि से असंतुलन इस युग में औरंगजेब के शासन से मिलता है। उससे पहले का समय हिन्दू-मुस्लिम दो भिन्न संस्कृतियों के मिलन का यह समय शाहजहाँ के पश्चात, विघटित होने लगा। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदारवादी नीतियों तथा पूर्व में सूफी संतो के उपदेशों से जो संस्कृति को निकट लाने का प्रयास हुआ था, वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण धराशायी होने लगा। पारस्परिक मेल-जोल, आदान-प्रदान के कम होने के साथ ही एक दूसरे के धर्म को समझने के प्रयासों व उनके प्रति आस्था और विश्वास में भी कमी आने लगी थी।

साहित्य और कलात्मक दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध रहा है। प्रदर्शन-प्रधान, चमक-दमक और अलंकरण को स्वीकार करने वाले इस युग में सामान्य जन से लेकर राजदरबार व निम्न से लेकर उच्चकोटि के कलाकार तक इस प्रवृत्ति के अभ्यस्त थे। कवि आचार्य और कवि शिक्षक की भूमिका एक साथ निभाने वाले ये कवि राजा और नवाबों द्वारा अत्यंत सम्मान तथा पुरस्कार आदि से प्रोत्साहित किये जाते थे। इसी मोहवश काव्य सृजन इस काल

में परिमाण व वैविध्य दोनों ही दृष्टियों से अधिक हुआ। डॉ. नगेन्द्र इस स्थिति का वर्णन करते हैं, "इस काल के कवि और कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति हुआ करते थे, तथापि अपने आश्रयदाता मुगल सम्राटों अथवा देशी राजाओं व नवाबों से उन्हें इतना सम्मान मिलता था कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गणना होती थी।.... इन लोगों ने अपनी कला का निपुण और परिमाण दोनों ही दृष्टि से अधिकाधिक विकास किया।"[12]

काव्य शास्त्र एवं श्रृंगार साहित्य की विपुल परम्परा भले ही संस्कृत से विकसित हुई हो परन्तु उसे मुखर होने का पूरा वातावरण रीतिकाल में मिला है। बिहारी युगीन काव्य पर कई संस्कृत ग्रंथ 'रसमंजरी', 'रसतरंगिनी', 'साहित्यदर्पण', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यादर्श' आदि का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। प्राकृत के 'गाथा सप्तशती', संस्कृत के 'आर्य सप्तशती', 'अमरूक शतक' आदि ग्रंथों का इस काव्य की भौतिकता को पृष्ट करने में विशेष योगदान रहा है। भक्तिकालीन एकरसता तथा जीवन के प्रति विरक्ति आदि के भाव को इन कवियों ने अपने सरस साहित्य में सींच कर उसमें उत्साह की लालसा जगाई। इसके साथ भक्ति और नीति की गंगा में भी मनचाहे रूप से गोता लगाते रहे। इन प्रयासों में अभाव रहा तो कवि की विचारात्मक स्वछन्द उड़ान का। डॉ.नगेन्द्र के शब्दों में, "दुर्भाग्य की बात यह रही कि इन्हें वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकी, जो सृजन के लिए अनिवार्य है। इन्हें सामान्य रूप से आश्रयदाताओं की अभिरूचि का विशेष ध्यान रखना पड़ता था, जिसका परिणाम यह होता था कि प्रतिभावान होते हुए भी ये लोग अपने सृजन का उत्तमोत्तम रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते थे। यह सब होते हुए भी इस युग के साहित्य और कला का अपना महत्त्व है और दोनों की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सहज ही दूसरे युगों की तत्सम्बन्धी रचनाओं में पृथक देखी जा सकती है।"[13]

यदि विचार किया जाए तो राजाओं के संकेतों पर पनपने वाला साहित्य भले ही अपने उत्तम रूप में सामने ना आ पाया हो परन्तु जिस भी रूप में वह आया, उसमें अपना सामाजिक एवं साहित्यिक दायित्व निभाने का प्रयास अवश्य किया है। इस युग का कवि भक्तिकालीन कवियों की तरह समाजसुधारक या नीति उपदेशक चाहे ना बना हो, पर काव्य रस की मधुर लहरियाँ बिखरने में पूर्णत: सफल रहा है। जनजीवन की भाषा ब्रजभाषा को उत्कर्ष ले जाने के साथ ही काव्यशास्त्र को भी हिंदी में लाने का श्रेय इन्हीं कवि आचार्यों और उनकी कविता को है।

कुल मिलाकर बिहारी युगीन राज्याश्रित कवियों और जनकवियों द्वारा रचित यह साहित्य गुण और परिमाण की दृष्टि से अत्यंत विशद एवं सम्पन्न है जो इस युग में साहित्यिक महत्त्व को द्योतित करता है।

साहित्यिक के साथ ललित कलाएँ भी इस इस युग में समृद्ध तथा पृष्ट हुई। जहाँगीर का राज्यकाल कलाओं के संरक्षण एवं विकास में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में कलाओं को संरक्षण मिलना कम हो गया इसी से आगे चलकर कलाओं का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। इन ललित कलाओं में स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला आदि हैं जिनकी स्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

स्थापत्य कला रीतिकाल से पूर्व अपने उत्कर्ष पर थी क्योंकि मुसलमानों की मस्जिद का निर्माण उस समय लगातार हो रहा था। स्वयं बाबर ने कुस्तुन्तुनिया से कारीगर बुलाकर दो मस्जिदों का निर्माण कराया। परन्तु हुमायूँ के स्थापत्य कला पर विशेष ध्यान न देने के बाद अकबर के काल में ईरानी वास्तु को प्रश्रय मिलने के कारण फतेहपुर सीकरी व आगरे जैसे किलों का निर्माण हुआ। जहाँगीर की स्थापत्य की बजाय चित्रकला में रूचि होने के कारण

नूरजहाँ के आदेश पर उसने जहाँगीर का मकबरा तथा दो एक भवन बनवाये। शाहजहाँ ने स्थापत्य कला को प्रतिष्ठित करने में विशेष रूचि ली और दीवान-ए-आम, दीवान-ए-ख़ास, जामा मस्जिद, मोती मस्जिद व ताज महल का निर्माण करवाया। शाहजहाँ के पश्चात यह कला पतनोन्मुख होने लगी क्योंकि औरंगजेब ने कला प्रेमी न होने के कारण इस कला को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

मूर्तिकला पर इस युग में नकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि भारत में मुसलमानों का अखंड साम्राज्य होने के कारण वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे और इसलिए उन्होंने इस कला को कोई विशेष संरक्षण प्रदान नहीं किया। श्री रायकृष्णदास ने मूर्तिकला के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "13वीं सदी के बाद उत्तर भारत की मूर्तिकला में जान नहीं रह जाती। मुसलमान विजेता मूर्ति के विरोधी थे, फलत: उनके प्रभाववश यहाँ के प्रस्तर शिल्प के केवल उस अंश में कला रह गयी जिसमें ज्यामितिक आकृतियों व फूल-बूटे की रचना होती थी। मूर्तियों के प्रति राज्याश्रय के अभाव में ऊँचे दर्जे के कारीगरों ने अपनी सारी प्रतिभा अलंकरणों के विकास में लगाई।"[14] वास्तविकता तो यह है की इस युग में कला की दृष्टि से सर्वाधिक ह्रास मूर्तिकला का ही हुआ।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी का समय महत्त्वपूर्ण रहा है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों की धर्मो के राजाओं का चित्रकला पर अनुराग होने के कारण यह कला इस काल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी। विशेषत: मुगल वंश चित्रकला का प्रेमी रहा है। बाबर और हुमायूँ आदि मुगल राजाओं ने अपने विषम काल में भी चित्रकारों को आश्रय दिया। अकबर स्वयं एक चित्रकार था इसलिए उसने भारतीय और ईरानी चित्रकला के समन्वय का प्रयास किया जो कि 'अकबर कला' कहलाई। जहाँगीर के स्वयं चित्रकार और

चित्रकला के ज्ञाता होने के कारण उसने चित्रकला को विकसित करने में योगदान दिया। यद्यपि शाहजहाँ वास्तुकला का प्रेमी था, फिर भी उसके समय में चित्रकला को उचित आश्रय व प्रोत्साहन मिला था, "शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोह चित्रकला का अत्यंत प्रेमी था। उसने अपने उत्कृष्ट चित्रों का संग्रहालय भी निर्मित किया था।..... शाहजहाँ के काल में संरक्षण और आश्रय की प्रणाली इतनी अधिक प्रसार पा गयी थी कि उसके अनुकरण में मुगल दरबार के अनेक हिन्दू तथा मुसलमान कुलीन पुरुषों ने ललित कला को संरक्षण देना आरम्भ किया।..... इस तरह शाहजहाँ के काल में आते-आते कला के प्रति प्रेम भावना मुगल तथा राजपूत दरबार के अतिरिक्त अन्य वर्गों के बीच भी बढ़ने लगी थी।"[15]

मुगलों के काल में जहां सभी कलाओं को महत्त्व मिल रहा था वहीं मुगल शासक औरंगजेब का समय सभी कलाओं के ह्रास व पतन का काल रहा क्योंकि औरंगजेब कला को विलास का साधन मानकर उसे धार्मिक भावना का विरोधी मानता था। इसी कारणवश यहाँ आकर चित्रकला को पर्याप्त संरक्षण न मिल पाने के अभाव में वह परवर्ती काल में हमें विश्रृंखलित रूप में मिलती है।

पूरे रीतिकाल में चित्रकला के दो प्रधान रूप मिलते हैं- एक राजपूत कला और दूसरा मुग़ल कला। राजपूत कलाकारों के चित्रों के मूल में उनकी वैष्णव भावना थी इसलिए वे वैष्णव-साहित्य तथा संगीतशास्त्र में वर्णित राग रागनियों के चित्र बनाने की ओर प्रवृत्त थे। अर्थात् "राजपूत कला के मूल में भारतीय साहित्य और संस्कृति थी, इसने एक महान कार्य यह किया कि विकासमान मुगल शैली के प्रभाव को रोककर विदेशियों पर भारतीयता का रंग भी चढ़ाया।"[16] मुगल कला के मूल में तत्त्व ईरान, फारस और गांधार के थे किन्तु अकबर के

काल में हिन्दू कला के भी अनेक तत्त्व इसमें शामिल हो जाने से इन दोनों के योग से समन्वित शैली को मुग़ल शैली कहा गया।

संगीतकला की स्थिति अकबर से पूर्व के मुगल शासकों को संगीत से कोई रूचि न होने के कारण स्थिर थी। अकबर के समय में अकबर के संगीत से लगाव के कारण यह कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। परन्तु शाहजहाँ के बाद संरक्षण के अभाव में इस कला में भी स्थिति चिंताजनक बन जाती है।

संक्षेप में कहें, बिहारी का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से भारी उथल-पुथल का रहा था। राजनीतिक शासन व्यवस्था में मुगलों के उत्कर्ष से पराभव के बीच भारतीय समाज में व्याभिचार, अनाचार, वेश्यावृत्ति, बाह्याडम्बर, अंधविश्वास जैसी अनेक कुरीतियाँ अपने पैर पसार चुकी थीं। आरम्भ में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का जो समन्वय, हिन्दू मुस्लिम मैत्री सम्बन्धों में जो मजबूती आई वह भी बाद में धार्मिक उन्मादता व कट्टरता के कारण बिखरने लगी। ऐसी स्थिति में साहित्यिक एवं कला जगत में हुआ विकास आश्चर्यचकित कर देता है। इस समय में ही कला अपने उस रूप में उत्कर्ष पर पहुँचती है जिसकी इस युग में उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी। काव्यकला, स्थापत्यकला, चित्रकला सभी को इस युग में उचित संरक्षण मिला जिसके कारण इनमें आया विकास भारतीय साहित्य व संस्कृति में दिए जाने वाले योगदान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस सभी युगीन परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया बिहारी में भी हमें देखने को मिलती है।

1.2 बिहारी का व्यक्तित्व :

सामान्यतः माना जाता है कि प्रत्येक साहित्यिक रचना में उसके रचनाकार के व्यक्तित्व का थोड़ा- बहुत अंश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य समाहित रहता है। कवि

अपने काव्य में जिन विचारों, भावों और कल्पना आदि का प्रयोग करता है, वह प्रायः उसके अध्ययन, अनुभव और चिन्तन जगत पर आधारित होता है, इसलिए किसी भी काव्य रचना के सम्यक विश्लेषण के लिए उस कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक हो जाता है क्योंकि व्यक्तित्व के निर्माण में जितना सहयोग युग व देशकाल का होता है उतना ही उस सामाजिक और पारिवारिक वातावरण का जिसमें वह पला बढ़ा और प्रभावित हुआ है। इसलिए इन परिवेशगत तथ्यों के बीज जीवन-चरित्र में भी छिपे होते हैं जिसके लिए जीवन वृत्त का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। कविवर बिहारी के व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके जीवन-वृत्त को जानना महत्त्वपूर्ण है।

आरम्भ में जीवन वृत्त लिखने की परम्परा ही हमारे साहित्य जगत में नहीं मिलती। इसलिए वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, कबीर आदि कवियों का कोई प्रामाणिक जीवन वृत्त नहीं मिलता। प्रामाणिकता के इस अभाव में इनके जीवन सम्बन्धी अनेक प्रश्न विवादास्पद रहे हैं, यही स्थिति रीतिकालीन कवि बिहारी की भी है।

नाम संबंधी मत :

बिहारी पर पहला विवाद उनके नाम से ही विद्वानों में शुरू हो जाता है। बिहारी के नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है कि 'बिहारी सतसई' के रचयिता कवि का नाम 'बिहारीलाल' है या 'बिहारीदास'। इसमें विद्वानों का एक वर्ग, कृष्णलाल, अम्बिकादत्त व्यास, ग्रियर्सन, मिश्रबंधु आदि कवियों के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी अपने इतिहास में कवि बिहारी का परिचय "बिहारीलाल"[17] नाम उल्लिखित कर 'बिहारीलाल' नाम को लेकर मतैक्य हैं।

वहीं गणपति चन्द्र गुप्त बिहारी के भानजे कुलपति मिश्र द्वारा रचित एक दोहे तथा जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी को प्राप्त हुई 'बिहारी सतसई' की एक प्राचीन प्रति पर अंकित नाम व उन वंश वृक्षों का तर्क अपने मत की पृष्टि हेतु देते हुए 'बिहारीदास' नाम का समर्थन करते हैं। भले ही बिहारी के भांजे कुलपति मिश्र द्वारा रचित दोहे में 'बिहारीदास' नाम का प्रयोग है, तथापि इस विवाद से परे बिहारी की काव्य प्रतिभा, काव्यात्मक वैशिष्ट्य और लोकप्रियता को देखते हुए और उनकी श्रेष्ठता के लिए जगन्नाथदास रत्नाकर जी द्वारा प्रयुक्त विशेषण 'कविवर बिहारी' बिहारी के नाम में सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है जिससे नाम की विशिष्टता भी सिद्ध हो जाती है।

जन्म संबंधी मत :

बिहारी के जन्म के सम्बन्ध में एक दोहा बिहारी-सतसई के टीकाकार द्वारा रचित है :

संवत् जुग सर रस सहित भूमि रीति गिनी लीं।

कातिक सुदी बुध अष्टमी, जनम हमें विधि दीन।।

यह दोहा स्वयं बिहारी द्वारा रचित न होने पर भी उनके जन्म समय पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। हिंदी साहित्य के लगभग सभी साहित्यकार व इतिहासकार यह मानते हैं कि बिहारी का जन्म सत्रहवीं शती में हुआ था, "अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित 'बिहारी - बिहार' की पदबद्ध भूमिका में रचित इस दोहे का अर्थ 'अंकानां वामतो गतिः' के आधार पर जुग=2, सर=5, रस=6, भूमि=1 अर्थात् 1652 विक्रमी होगा।"[18]

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा डॉ. नगेन्द्र भी इसी जन्म समय की पृष्टि करते हैं। अत: इसी तिथि को प्रामाणिक तिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

जन्म स्थान :

बिहारी के जन्म स्थान, बाल्यकाल, यौवन एवं विवाह के सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है क्योंकि इस सम्बन्ध में एक दोहा मिश्रबंधु विनोद में उद्धृत हुआ है जिसे बिहारी द्वारा ही रचित माना गया है -

जनमु ग्वालियर जानियै खंड बुंदैलै बाल।

तरूनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल।।

विभिन्न विद्वानों ने इस दोहे को प्रामाणिक मानते हुए बिहारी का जन्म स्थान ग्वालियर, बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड, तथा युवावस्था और विवाह मथुरा में होना स्वीकार किया जाता है। आचार्य रामचंद शुक्ल ने, "बिहारी का जन्म स्थान ग्वालियर के निकट बसुआ गोविंदपुर" [19] नामक स्थान को माना है।

बिहारी का वंश और पिता :

बिहारी के वंश और पिता इन दो तथ्यों पर भारी मतभेद रहा है। बिहारी रचित दोहा इस सम्बन्ध में प्रकट है:

"प्रगट भए द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।

मेरे हरौ कलैशु सबु, केसौ केसौराइ।।"[20]

इस दोहे के आधार पर विचार करने से द्विजराज कुल का अर्थ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होना हुआ। इसमें केशव का अर्थ भगवान कृष्ण और केशव राय पिता से दुखों को हरने का अनुरोध व्यक्त करने के अर्थ में हुआ है। इसी सम्बन्ध में प्रथम वर्ग के विद्वानों की मान्यता है

कि इस दृष्टि से बिहारी माथुर चौबे होते हैं और रीतिकालीन प्रसिद्ध आचार्य केशवदास के शिष्य होते हैं। द्वितीय वर्ग में कुछ विद्वान इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण 'केशव राय' शब्द से केशवदास को इनका गुरु नहीं पिता मानते हैं। इन प्रथम श्रेणी के विद्वानों में जगन्नाथदास रत्नाकर, पंडित गिरिधर शर्मा, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल[21] एवं पंडित लोकनाथ द्विवेदी[22] आते हैं। जिनकी मान्यता है की बिहारी लाल जी धौम्य गोत्रीय माथुर चौबे थे। "बिहारी की बहन का विवाह चूँकि मिश्र कुल में हुआ था और चौबे ब्राह्मणों की कन्याएं आज भी मिश्र कुल में आती हैं। इसी से बिहारी का चौबे होना प्रमाणित होता है।"[23] बिहारी के सन्दर्भ में इस तर्क के साथ यही मत बहुमान्य है।

बिहारी के पिता के विषय में मतभेद का मूल आधार भी यही दोहा है। जिसके आधार पर कुछ विद्धान 'केशवराय' से केशवदास अर्थ लेकर बिहारी को रीतिकालीन कवि केशवदास का पुत्र मानते हैं तो वहीं कुछ विद्वान इस मत के विपरीत हैं। गणपति चन्द्र गुप्त केशवराय को बिहारी का पिता मानते हुए लिखते हैं, "इसके पिता प्रसिद्ध कवि केशवदास ही थे। केशवदास का जीवन काल, निवास-स्थान, व्यक्तित्व, काव्य-प्रवृत्तियाँ आदि तो इस दृष्टि से अनुकूल पड़ती हीं है, इसके अतिरिक्त केशवदास के वंश वृक्ष में भी उनके एक पुत्र का नाम 'बिहारीदास' मिलता है। अत: अब इसमें कोई संदेह नहीं कि सतसईकार बिहारी प्रसिद्ध कवि केशवदास (रामचन्द्रिका के रचयिता) के पुत्र थे।"[24] गणपति चन्द्र गुप्त के इस मत का समर्थन गणपति चन्द्र गुप्त के पुत्र रमेशचन्द्र ने भी, "हमें इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।"[25] कहकर किया है।

इस विषय में प्रायः अधिक उलझन नहीं होती क्योंकि केशव सनाढय ब्राह्मण थे और बिहारी माथुर चौबे। पिता पुत्र के गौत्र में यह अंतर सम्भव नहीं हो सकता। केशव और बिहारी

में इन कई समानताओं का कारण बिहारी का केशवदास के सानिध्य में कुछ समय रहकर काव्याभास करना भी हो सकता है अर्थात् केशवदास बिहारी के गुरु हो सकते हैं। परन्तु इस दोहे से इतना अवश्य निश्चित होता है कि बिहारी के पिता का नाम केशव अथवा केशवराय था जो कि उच्चकोटि के विद्धान एवं कवि रहे होंगे। बिहारी के पिता के इस नाम का समर्थन (बिहारी के भानजे) कुलपति मिश्र द्वारा रचित 'संग्राम सार' के एक दोहे से भी होता है

लेकिन एक ओर केशव तथा बिहारी इन दोनों प्रसिद्ध रीतिकालीन कवियों के बीच पिता-पुत्र सम्बन्ध की बात आकर्षक भी लगती है और उसकी सम्भावना भी प्रतीत होती है परन्तु कुछ बातें इस सम्बन्ध में अधिक विरोधी होने के कारण इस मत में शंका उत्पन्न करती हैं जिसमें, "पहली बात कि बिहारी माथुर चौबे थे और केशव स्वयं को सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं। दूसरी बात कि बिहारी-बिहार में बिहारी के पितामाह का नाम वासुदेव होने का जिक्र है जबकि केशव ने अपने पितामाह का नाम काशीराम बताया है और इनसे पृथक तीसरी बात की इन दोनों कवियों में पिता-पुत्र सम्बन्ध का होना जनश्रुति में प्रचलित नहीं है।"[26]

बिहारी के भाई तथा बहन भी थी। उनकी इसी बहन के पुत्र कुलपति मिश्र हैं, "बिहारी के पिता इन्हें आठ वर्ष की आयु में ही ग्वालियर से ओरछा रियासत ले गए। वहाँ महाकवि केशवदास से बिहारी का सम्पर्क स्थापित हुआ। फलस्वरूप केशवदास जी से आपने काव्यग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। ओरछा के समीपवर्ती गुढ़ा ग्राम में निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुभवी महात्मा नरहरिदास रहते थे। बिहारी के पिता इन्हीं के शिष्य थे।"[27] डॉ.रवीन्द्र कुमार जैन के इस कथन में केशव द्वारा बिहारी का शिक्षा ग्रहण करना और उनके पिता केशवराय का नरहरिदास जी का शिष्य होना दो अलग अलग घटनाओं में दो अलग व्यक्तियों की और स्पष्ट संकेत करता है जिससे बात को मानने में भी संकोच नहीं रह जाता कि बिहारी

के पिता कोई अन्य कवि केशवराय रहें होंगे, प्रसिद्ध कवि केशवदास से तो उन्होंने शिक्षा ही ग्रहण की थी।

गुरु एवं आश्रयदाता :

बिहारी ने महात्मा नरहरिदास से ही संस्कृत, धर्मशास्त्र एवं प्राकृत का अध्ययन किया था। "बिहारी के पिता इन्हीं के शिष्य थे। बिहारी ने इनसे ही संस्कृत, धर्म शास्त्र एवं प्राकृत का अध्ययन किया।"[28] संवत् 1664 में महाकवि केशवदास के देहांत के पश्चात ही बिहारी के पिता, बिहारी और उनके भाई-बहन को वृन्दावन ले आये थे क्योंकि "वृन्दावन में बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का भी अभ्यास किया। उसी समय इनका विवाह माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण परिवार में हुआ। विवाह के बाद वह अपने ससुराल में ही रहने लगें। संवत् 1675 में शाहजहाँ वृन्दावन आया और स्वामी हरिहर दास जी के स्थान का दर्शन करने के निमित्त विधुवन गया। वहाँ महात्मा नरहरिदास जी ने बिहारी की काव्यनिपुणता का बादशाह के समक्ष वर्णन किया जिसे सुनकर शाहजहाँ इन्हें अपने साथ आगरा ले गया। आगरा में इन्होंने फ़ारसी की शायरी का अध्ययन किया। यहीं इनकी अब्दुर्रहीम खानखाना से भेंट हुई। कहते है, खानखाना की प्रशंसा में भी बिहारी ने कुछ दोहे लिखे जिनसे प्रसन्न होकर रहीम ने इन्हें प्रभूत धन पुरस्कार में दिया।"[29]

डॉ. नगेन्द्र के इस कथन से बिहारी के जीवन की विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। इन्हीं घटनाओं में एक घटना शाहजहाँ के पुत्र जन्मोत्सव की है। शाहजहाँ ने अपने पुत्र के जन्मोत्सव में अनेक राजा महाराजाओं को आमंत्रित किया। कवि बिहारी ने इस अवसर पर अपनी काव्य प्रतिभा का जादू बिखेर अनेक राजाओं को प्रभावित किया जिसके कारण उन

राजाओं ने बिहारी की वार्षिक वृत्ति अपने दरबार से बाँध दी। इन्हीं राजाओं में राजा जयसिंह भी एक थे।

अपनी वार्षिक वृत्ति लेने के लिए बिहारी नियमानुसार कुछ राजाओं के यहाँ जाया करते थे। संवत् 1692 में बिहारी अपनी वार्षिक वृत्ति लेने जब आमेर पहुंचे तो उन्हें वहाँ ज्ञात हुआ कि वहाँ के राजा जय सिंह अपनी नवपरिणीता रानी के वय:संधि एवं सौन्दर्य पर रीझकर राजकाज छोड़ महल में भीतर ही रहते हैं, इसलिए बिहारी ने बड़े कौशल से महल के भीतर राजा को दोहे के रूप में कान्तासम्मित उपदेश लिखकर उसे पुष्प की डलियों में डाल कर राजा तक पहुंचा दिया, जो नियमित रूप से मालिन द्वारा महाराज की सेज सज्जा के लिए ले जाई जाती थी। बिहारी के इस दोहे ने राजा जयसिंह पर ऐसा प्रभाव डाला की वे अन्तःपुर के साथ-साथ अपने श्रृंगार विलास से भी बाहर हो गए और पुन: राजकार्य में लग गये। बिहारी को राजा जयसिंह ने उनके इस नैपुण्य के लिए अंजुली भर मुद्राएं देकर सत्कार किया तथा उनकी प्रंशसा करते हुए भविष्य में ऐसे दोहों की रचना पर सम्मान व पुरस्कार का आश्वासन देकर बिहारी को दोहे रचने की प्रेरणा दी। बिहारी ने इसके पश्चात राजा जयसिंह के ही राज्याश्रय में रहकर काव्यसृजन के रूप में 'बिहारी सतसई' की रचना की।

देहांत :

किवदन्ती के अनुसार बिहारी का देहावसान ब्रज में होना प्रसिद्ध है किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इनके देहावसान का समय मिश्रबन्धु,[30] रामचन्द्र शुक्ल,[31] डॉ. नगेन्द्र[32] लगभग संवत् 1720 के आसपास मानते हैं जबकि जगन्नाथदास रत्नाकर जी[33] 'कविवर बिहारी' नामक पुस्तक में संवत् 1721 को बिहारी की मृत्यु स्वीकार करते हैं। अत: बिहारी सम्भवतः 1721 के आस पास तक वर्तमान रहे होंगे।

कविवर बिहारी के सम्पूर्ण जीवन पर विचार करते हुए उनके जीवन के कई पक्ष उजागर होते हैं। यथा - बिहारी ने बड़े-बड़े विद्वानों, प्रकांड पंडितो और प्रसिद्ध महात्माओं से सत्संग प्राप्ति कर संस्कृत, फ़ारसी, हिंदी, प्राकृत एवं उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन किया और साहित्य एवं संगीत में सिद्धहस्थ होकर सम्राट, महाराज, मंत्री आदि लोगों के बीच अपना जीवन बिताया। इससे उनके व्यक्तित्व की भी बहुत सी बातें हमारी समझ में आती हैं। डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन के शब्दों में, "कविवर बिहारी का जीवन देशाटन, विद्या अध्ययन, संगीत, श्वसुरालय के अनुभव, राजाओं का गहरा सम्पर्क, राष्ट्रीय भावना भक्ति एवं श्रृंगार के विविध तत्वों का ऐसा अनुपम पंचामृत है जो हिंदी साहित्य में अपना अक्षुण्ण महत्त्व रखता है।"[34]

बिहारी का व्यक्तित्व उनके इसी परिवेश से निर्मित एवं विकसित हुआ है। यही कारण है कि वे प्रेमी, उदार एवं आत्माभिमानी कवि के रूप में दिखाई देते हैं जिनमें राष्ट्रीय व जातीय प्रेम भी भरपूर था। उन्होंने जीवन भर किसी की अनुचित प्रशंसा नहीं की थी। उनका जातीय प्रेम इस बात से ही स्पष्ट है कि अपने संरक्षक राजा जयसिंह के औरंगजेब की ओर से शिवाजी से लड़ाई पर प्राप्त होने वाली विजय पर उन्होंने कोई ख़ुशी और प्रशंसा व्यक्त नहीं की बल्कि इससे अपनी असंतुष्टि अन्योक्ति के माध्यम से व्यक्त की :

स्वारथु, सुकृत न, श्रमु, वृथा, देखि, बिहंग विचारि।

बाज, पराए पानी परि तूं पच्छीनु न मारि।।

मिश्रबंधु भी उनके राष्ट्रीय और जातीय प्रेम का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "बिहारी ने शिवाजी की पराजय का हाल स्पष्ट नहीं लिखा यद्यपि स्वयं मिर्जा राजा जयसिंह ने उन्हें हराया था। इससे जान पड़ता है कि मुगलों की और से जयसिंह का शिवाजी से लड़ना इन्हें भला नहीं लगा। इस बात से प्रच्छन्न रूप से इनका जातीय प्रेम देख पड़ता है।"[35]

बिहारी के व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं से गणपतिचन्द्र गुप्त भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते और कहते हैं, "बिहारी अत्यंत प्रतिभाशाली, सुविकसित रुचि से सम्पन्न, रसिकता से ग्रसित, युगीन संस्कारों से युक्त, गंभीर एवं व्यापक अध्ययन से युक्त, सीमित अनुभूतियों से अनुप्राणित, अनेक प्रेरणाओं एवं विभिन्न प्रयोजनों से काव्य रचना करने वाले संग्रहशील एवं समन्वयवादी व्यक्ति थे। अनुभूति क्षेत्र की सीमाओं ने ही उन्हें सीमित कर दिया अन्यथा उन्हें महाकवि का व्यक्तित्व प्राप्त था।"[36]

इस प्रकार संक्षेप में बिहारी के व्यक्तित्व को शब्दबद्ध किया जाए तो गम्भीर और विनोदशीलता से समन्वित, कर्तव्यपरायण, स्पष्टवादी, चाटुकारिता से परे, रसप्रवण व रसिक स्वभाव के साथ सूक्ष्म दृष्टि आदि अनेक गुण बिहारी के व्यक्तित्व की पहचान हैं।

1.3 बिहारी का कृतित्व :

कविवर बिहारी की 'बिहारी सतसई' एकमात्र उपलब्ध रचना है। बिहारी द्वारा रचित सतसई का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट है कि 'सतसई' कहने या सुनने से प्राय: सर्वप्रथम 'बिहारी सतसई' का ही बोध होता है। 'सतसई' संस्कृत के सप्तशती का अपभ्रंश रूप है। पं. पद्मसिंह शर्मा के अनुसार, "'सतसई' और 'सतसैया' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' और 'सप्तशतिका' शब्दों के रूपान्तर हैं, जो 'सात सौ पद्यों का संग्रह' इस अर्थ में योगरूढ़ हो गए हैं।"[37]

हिंदी के सतसई ग्रंथो में 'बिहारी सतसई' की गणना उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रंथो में की जाती है। इसमें भक्तिकालीन कवियों के प्रेम-तत्त्व के विवेचन के साथ-साथ नीति, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण आदि नवीन विषयों का भी समावेश है और यही इसकी लोकप्रियता का कारण भी है।

'बिहारी सतसई' में दोहों की संख्या पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सभी टीकाकार व आलोचक 'बिहारी सतसई' में दोहों की संख्या लगभग 700 स्वीकार करते हैं। मिश्रबंधु 'मिश्रबंधु विनोद' में अपना मत स्पष्ट करते है कि "सतसई में कुल 719 दोहें हैं।"[38] जबकि जगन्नाथदास जी ने पर्याप्त छानबीन के बाद सतसई के 713 दोहों को ही प्रामाणिक मानकर वर्णित किया है।

'बिहारी सतसई' का रचनाकाल प्राचीन टीकाकार ज्वाला प्रसाद मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास तथा लल्लूलाल संवत् 1719 मानते हैं जबकि मिश्रबंधु बिहारी सतसई के रचनाकाल पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "सतसई का रचना काल 1707 (खोज 1903) में मिलता है।"[39] शुक्ल जी की दृष्टि में 'बिहारी सतसई' के सबसे प्रामाणिक टीकाकार जगन्नाथदास रत्नाकर हैं जिन्होंने 1704 संवत् में 'बिहारी सतसई' की रचना मानी है।

संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी के सतसई साहित्य में जितनी भी मौलिक उद्भावनाओं और कल्पनाओं का प्रादुर्भाव हुआ था, उन सभी का चरम विकास बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' में दिखाई पड़ता है। 'बिहारी सतसई' का निर्माण बिहारी ने राजा जयसिंह की आज्ञा से किया था। 'बिहारी सतसई' के प्राचीन टीकाकारों पं. अम्बिकादत्त व्यास, ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि ने अपनी टीकाओं में बिहारी की आश्रय प्राप्ति एवं सतसई की रचना व उसकी प्रेरणा सम्बन्धी एक घटना का उल्लेख किया है जिसे प्राय: सभी इतिहासकारों व आलोचकों ने मान्यता दी है। घटनानुसार जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह अपनी नवविवाहित रानी के मोह में इस प्रकार से बंधे थे कि उन्होंने शासक के समस्त उत्तरदायित्वों से स्वयं को विलग कर लिया था। बिहारी को महल में यह ज्ञात होने पर उन्होंने तत्काल मिर्जा राजा जयसिंह को

उत्तरदायित्त्व के प्रति सचेत करने के मन्तव्य से एक दोहा लिखकर उसे राजा तक पहुँचा दिया जो कि इस प्रकार था -

"नहि परागु नहि मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल।

अली, कलि ही सुन्यौ बध्यौ, आगे कौन हवाल।।"[40]

राजा द्वारा यह दोहा पढ़ते ही वह बिहारी की कवित्व प्रतिभा पर मोहित हो गए और उनका सम्मान करते हुए उनसे ऐसे ही और अधिक दोहों की रचना का प्रस्ताव रखा। इसी के परिणामस्वरूप बिहारी द्वारा 'बिहारी सतसई' की रचना प्रारम्भ हुई। बिहारी के सम्बन्ध में सतसई रचना प्रेरणा संबंधी इस घटना का प्रमाण बिहारी द्वारा रचित यह दोहा है :

"हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि राधिका-प्रसाद।

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद।।"[41]

बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' का सतसई-परम्परा में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन प्राचीन संस्कृत तथा प्राकृत सप्तशतियों को सतसई परम्परा की पूर्ण विकसित अवस्था माना जाता था उनमें 'गाथा सप्तशती' और 'आर्य सप्तशती' का व्यापक प्रभाव 'बिहारी सतसई' पर स्पष्टत: ही दिखाई देता है, उसमें 'बिहारी सतसई' की मौलिकता तथा लोकप्रियता को स्पष्ट करते हुए डॉ. हरेन्द्र प्रताप सिन्हा के शब्द हैं, "प्राचीन संस्कृत तथा प्राकृत सप्तशतियों में काव्य तत्त्व का वह रूप नहीं मिलता जो 'बिहारी सतसई' में है। इसमें भक्तिकालीन कवियों के प्रेम तत्त्व का विवेचन भी है और साथ ही साथ नीति, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण आदि नवीन विषयों का भी समावेश है।"[42]

बिहारी सतसई से प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ती कवियों ने अनेक सतसईयों की रचना की जिनमें मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, वीर सतसई, हरिऔध सतसई आदि के नाम उल्लेखीय हैं। सतसई की इस श्रृंखला में सूर्यमल तथा वियोगी हरि ने एक ओर वीर भावों से इसे सींचा वहीं दूसरी ओर हरिऔध इसमें श्रृंगार रस का संचार कर रहें हैं, जबकि इनसे अलग वृन्द की सतसई नीति का मार्ग प्रशस्त करने वाली रचना है।

बिहारी सतसई की अक्षुण्णता का आधार उसका भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही है इसमें प्रकृति के रमणीक दृश्यों का नियोजन, सुंदर अलंकर-विधान, वक्रोक्ति और वागवैद्ग्ध्य से उत्पन्न चित्रात्मकता, मानव-स्वभाव व प्रकृति के सजीव चित्रांकन के साथ चित्रात्मक उपस्थापन, श्रृंगार-रस के मिलन व विरह का आकर्षक उद्घाटन तथा लोकव्यवहार और नीतिशास्त्र का विलक्षण विश्लेषण सभी कुछ एक साथ मिल जाता है। 'बिहारी सतसई' की इस बहुविध रूप से उपजी लोकप्रियता से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने 'बिहारी सतसई' पर टीकाएँ लिखीं जिनमें कृष्णलाल कवि की टीका, मान सिंह की टीका, चरण दास की टीका, अमरचंद्रिका टीका, हरिप्रकाश टीका आदि टीकाएँ साहित्य में 'बिहारी सतसई' के महत्त्व की घोतक हैं। गुरुदेव नारायण 'बिहारी' और 'बिहारी सतसई' का महत्त्व अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं, "हिंदी की मुक्तक परम्परा में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है। हिंदी में तुलसी कृत 'रामचरितमानस' के पश्चात 'बिहारी सतसई' ही ऐसा ग्रंथ है, जिसकी सर्वाधिक टीकाएँ और अनुवाद हुए हैं, श्रृंगार रस के क्षेत्र में सतसई को जितना आदर प्राप्त हुआ, उतना अन्य किसी को नहीं।"[43] तथा "जिन भावों को अभिव्यक्त करने के लिए प्राकृत कवियों ने गाथा छंद, गोवर्धनाचार्य ने आर्याछन्द और अमरुक ने शार्दूलविक्रीड़ित जैसे बड़े-बड़े छंद पसंद किये, उसी काम के लिए बिहारी लाल ने दोहा जैसा छोटा छंद चुना।... ज़रा से दोहे में जो अर्थ सिमटा बैठा था वह वहाँ से निकलते ही इतना फैला कि कुंडलियों और कवित्तों के बड़े मैदान

में नहीं समा सका। मानो गंगा का समृद्ध वेग प्रवाह है जो शिवजी की लटों से निकलकर फिर किसी के काबू में नहीं आता।"[44]

देखा जाये तो, कविवर बिहारी ने अपनी सतसई की रचना दोहा छंद में की जिसमें छोटे से दोहे छंद में भरे गूढ़ भाव और उसके प्रभाव का गहरापन अभी भी प्रशंसनीय बना हुआ है। इसी कारण कवियों को कहना पड़ा :

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

समग्रता में, बिहारी के युग में व्यक्त वैभव, विलास, राजनीतिक हलचल, सामजिक कुरीतियों व धार्मिक विसंगतियों ने बिहारी के उस व्यक्तित्व को गहरा प्रभावित किया जो विविध भाषाओं और साहित्य के ज्ञानार्जन द्वारा बिहारी में निर्मित हुआ था। युगीन परिस्थितियों की आवश्यकता ने जहाँ एक और बिहारी को दरबारी बनाया वहीं यह बिहारी के अनुभव, चिंतन और तर्कपूर्ण विवेक के कारण उनके व्यक्तित्व में तत्कालीन परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप रसिकता, गम्भीरता, विनोदशीलता, कर्तव्यपरायणता, स्पष्टवादिता, राष्ट्रवादिता तथा आत्माभिमानी गुण जैसे भावों के संचार का माध्यम भी बना जिसका प्रभाव उनकी सतसई में भी स्पष्टत: देखा जा सकता है। दोहे में बिहारी ने युगीन आवश्यकतानुरूप एक ओर काव्य-सृजन के समय दरबारी कवि होने के कर्तव्य का पालन करते हुए राजाओं की रुचि अनुरूप दरबार, श्रृंगार, विलास, नायक-नायिका भेद आदि को काव्य का विषय बनाकर चित्रांकन किया तो दूसरी ओर एक कवि के रूप में अपने सामाजिक दायित्वों का अनुपालन करते हुए धर्म में फैली विसंगति और सामजिक कुरीतियों से लोगों में जागृति लाने हेतु भक्ति

तथा नीति को भी अपने दोहे के माध्यम से प्रसारित करने का प्रयास किया है जो की हिंदी साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सन्दर्भ :

1. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 160
2. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद; गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 430
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद; हिंदी साहित्य का अतीत(भाग-2); वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 36
4. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 164
5. शर्मा, हरवंशलाल; शास्त्री, परमानन्द; बिहारी और उनका साहित्य; भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ; पृष्ठ. 13
6. यादव, राजकिशोर सिंह; बिहारी की काव्य-कला; पृष्ठ. 12
7. नारायण, गुरुदेव; बिहारी: एक नव्यबोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 23
8. नगेन्द्र; हरदयाल; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5, नोएडा 201301; संस्करण: 2012; पृष्ठ. 263

9. ‘रत्नाकर’, जगन्नाथदास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 49; दोहा संख्या-54
10. वही; पृष्ठ. 85; दोहा संख्या-141
11. शील, ईश्वरदत्त; हिंदी साहित्य का मध्यकाल; गरिमा प्रकाशन, कानपुर 208021, भारत; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 380
12. नगेन्द्र; हरदयाल; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5, नोएडा 201301; संस्करण: 2012; पृष्ठ. 264
13. वही; पृष्ठ. 264
14. दास, रायकृष्ण; भारतीय मूर्तिकला; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; संस्करण: 2005; पृष्ठ. 141-142
15. सिन्हा, रणवीर सिंह; कविवर बिहारीलाल और उनका युग; पृष्ठ. 129
16. यादव, राजकिशोर सिंह; बिहारी की काव्य-कला; पृष्ठ. 19
17. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद ; गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 431
18. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 167
19. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 2
20. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल,

दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ.167

21. 'रत्नाकर', जगन्नाथ दास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 68; दोहा संख्या-101
22. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 167
23. सिलाकारी, पं. लोकनाथ द्विवेदी; बिहारी-दर्शन; राष्ट्रीय प्रकाशन-मण्डल, मछुआटोली, पटना; संस्करण: संवत् 2007; पृष्ठ. 4
24. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 2
25. गुप्त, गणपतिचन्द्र; हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास(प्रथम खण्ड); लोकभारती प्रकाशन; संस्करण: 2010; पृष्ठ. 455
26. रमेशचन्द्र; बिहारी:व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 23
27. रमाशंकर तिवारी; बिहारी का काव्य-लालित्य; ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर-12; संस्करण: 1970; पृष्ठ.13
28. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 3
29. वही; पृष्ठ. 3

30. नगेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग); नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ. 512
31. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद (द्वितीय भाग); गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 432
32. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 246
33. नगेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग); नगरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ. 513
34. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; कविवर बिहारी; पृष्ठ.382
35. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 5
36. मिश्रबंधु; हिंदी नवरतन; संस्करण: द्वितीय; पृष्ठ. 304
37. गुप्त, गणपतिचन्द्र; बिहारी सतसई वैज्ञानिक समीक्षा; संस्करण: प्रथम ; पृष्ठ. 41
38. शर्मा, पण्डित पदमसिंह; बिहारी की सतसई; काशीनाथ शर्मा प्रकाशक, काव्यकुटीर नायकनगला, बिजनौर; संस्करण: 1991 वि०; पृष्ठ.17
39. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद (द्वितीय भाग); गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 432
40. वही; पृष्ठ. 432
41. 'रत्नाकर', जगन्नाथ दास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ.

42. दोहा संख्या-38

43. वही; पृष्ठ. 311; दोहा संख्या-713

44. सिन्हा, हरेन्द्र प्रताप; बिहारी सतसई का मूल्यांकन; स्मृति प्रकाशन, 61, महाजनी टोला, इलाहाबाद-3; संस्करण: 1971; पृष्ठ. 20

45. नारायण, गुरुदेव; बिहारी : एक नव्य बोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 29

46. शर्मा, पण्डित पदमसिंह; बिहारी की सतसई; काशीनाथ शर्मा प्रकाशक, काव्यकुटीर नायकनगला, बिजनौर; संस्करण: 1991 वि०; पृष्ठ. 32

द्वितीय अध्याय

चित्रांकन : अर्थ, स्वरूप एवं शैलियाँ

कलाएँ मनुष्य की सहचरी हैं। वह मानवीय रचना होने के कारण मानव जाति के विकास का प्रतीक है। जिस देश की कला जितनी अधिक विकसित होती है उस देश को उतना ही अधिक सभ्य और सुसंस्कृत समझा जाता है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान के लिए ही मनुष्य ने कला रुपी सहज और जीवंत माध्यम की तलाश की है। वह कला के माध्यम से अपनी सौन्दर्य अनुभूति, हर्ष विषाद के क्षण, उत्कर्ष, उत्कंठा और अपने मन की कोमल भावनाओं को व्यक्त करता आया है। मनुष्य द्वारा किया गया यह रचनात्मक कार्यकलाप लगातार देश काल की सीमा से ऊपर उठकर विकसित होता रहा है। अनेक विद्धानों ने कला के अनेक रूप बताये हैं। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में चौसठ कलाओं का उल्लेख मिलता है जबकि अरस्तु ने कला के तीन भेद माने हैं - ललित कला, आचरण कला, उपयोगी कला। सामान्यता कला का वर्गीकरण दो प्रमुख रूप में किया जा सकता है :

1. उपयोगी कला

2. ललित कला

उपयोगी कलाओं के अंतर्गत वे सभी कलाएँ आती हैं जिनसे हमारी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जैसे भोजन निर्माण, वस्त्र निर्माण, काष्ठ निर्माण आदि।

ललित कलाएँ कलाओं का सबसे उत्तम रूप है अंग्रेजी भाषा के 'फाइन आर्ट' का यह हिंदी अनुवाद है। जिन कलाओं से हमें सौन्दर्य की अनुभूति और आनंद की प्राप्ति होती है

उन्हें ललित कलाएँ कहते है। जैसे स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्यकला, और संगीतकला।

ये सभी ललित कलाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न रूप में है परन्तु साहित्यिक अथवा काव्यात्मक दृष्टि से इनका एक विशेष सम्बन्ध है जिस पर रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्द पूर्णत: प्रकाश डालते हैं, "चित्र भाव को आकार प्रदान करता है। चित्र देह है और संगीत प्राण है।" [1] इसी प्रकार काव्य और चित्र के सम्बन्धों पर होरेस के चित्र सम्बन्धी यह विचार, "चित्र बिना शब्दों की कविता है।"[2] चित्र में परोक्ष रूप से काव्य की उपस्थिति की ओर संकेत करते हैं। सिमोनिडीज के अनुसार, "चित्र मूक कविता है और कविता मुखर चित्र है।"[3] ये सभी कथ्य चित्र में काव्य की उपस्थिति के साथ ही काव्य में चित्र की सम्भावनाओं को भी स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हैं।

काव्य में उपस्थित चित्रों की इन्हीं सम्भावनाओं पर विचारात्मक दृष्टि होने के फलस्वरूप साहित्यिक तथा शोध विषय के परिप्रेक्ष्य में चित्रकला को हम आगे प्रत्येक स्थान पर चित्रांकन के रूप में उल्लिखित करेंगे।

2.1 : चित्रांकन : अर्थ एवं परिभाषा

चित्र का अर्थ:- 'तस्वीर, चित्रकारी अथवा आलेखन'

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार, "कागज कपड़े आदि पर बनाई हुई किसी चीज की प्रतिमूर्ति"[4]

चित्र की परिभाषा -" चित्रकार जब अपने रंग और तूलिका से अपनी कल्पना को किसी भित्ति, कागज अथवा काण्टन पर उतारता है तो वह चित्र है।"[5]

चित्रांकन का सामान्य अर्थ है :- चित्र अंकित करना।

चित्रांकन की परिभाषा :

चित्रांकन को चित्रकला के सन्दर्भ में अनेक विद्धानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है -

डॉ. रीता प्रताप के अनुसार, "किसी समतल धरातल, जैसे- भित्ति, काष्ठफलक आदि पर रंग तथा रेखाओं की सहायता से लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई तथा ऊँचाई को अंकित कर किसी रूप का आभास करना 'चित्रकला' है।"[6]

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "चित्रकला मनुष्य की उस रचना को कहते हैं जिसमें मनुष्य अपनी कला को अथवा किसी प्राकृतिक वस्तु या किसी भी वस्तु को रंग के माध्यम से किसी भित्ति पर उरेहता है या अंकित करता है।"[7] परन्तु, यह भी सत्य है कि "लेखन का सम्बन्ध सिर्फ शब्दों से ही नहीं, रेखाओं और रंगो द्वारा चित्र-निर्धारण से भी है"[8] ठीक उसी प्रकार, जैसे चित्रकला का सम्बन्ध सिर्फ रेखाओं और रंगो द्वारा चित्र के अंकन में ही नहीं, शब्दों के कलात्मक प्रयोग द्वारा चित्रों के अंकन से भी है।

चित्र और कविता दोनों की कसौटी को समान मानते हुए प्रेमचंद इनके सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, कि "कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भावनाओं का परिणाम है। जो काम कवि करता है, वही चित्रकार करता है; कवि भाषा से, चित्रकार पेंसिल या कलम से। सच्ची कविता की परिभाषा वह है कि तस्वीर खींच दे। उसी तरह सच्ची तस्वीर का यह गुण है कि उसमें कविता का आनन्द आये ।"[9]

पद्मश्री कपिला वात्स्यायन भी साहित्य में चित्रों के अंकन अर्थात् चित्रांकन पर विचार करते हुए कहती हैं कि "साहित्यकार शब्दों में चित्र बनाता है, शब्दों में संगीत का गुंजन करता है।"[10] इस प्रकार अपने शब्दों में कहें तो चित्रांकन की स्पष्ट परिभाषा, मनुष्य द्वारा अपनी कल्पना अथवा किसी भी वस्तु को शब्दों अथवा रंगो के माध्यम से उकेरना ही है।

2.2 : चित्रांकन का स्वरूप :

चित्र सृजन की चाह मानव में सर्वप्रथम कब और कैसे उपजी होगी, उसका प्रचलन कब और कैसे धीरे-धीरे संस्कृति का अंग बन गया यह तो निश्चित रूप से कहना कठिन है परन्तु आदिकाल से वर्तमान समय तक मानव शब्दों, रेखाओं, रंगो तथा आकार आदि के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। जब आदिमानव ने गिरी कन्दराओं को अपना आश्रय स्थल बनाया और तब जो उदगार उन्होंने दीवारों पर चित्र रूप में उकेरे वहीं से चित्रांकन के स्वरूप की निर्मिति आरम्भ मानी जा सकती है जिसमें समयानुसार देश, काल, वातावरण तथा संस्कृति में होने वाले लगातार परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभाव के कारण निरंतर बदलाव आता रहा है। इसी से चित्रों के सम्बन्ध में मानवानुराग का पता चलता है, जो कि आज तक भी बना हुआ है। इसके प्रमाण रूप में चित्र भारत तथा अन्य देशों में मिलते हैं।

2.2.1 : आदिकालीन चित्रांकन :

आदिकालीन चित्रांकन में शैलचित्र अथवा गुहाचित्र मानव सभ्यता के आरम्भिक उदाहरण कहे जा सकते हैं। इन चित्रों में आदिमानव ने अपनी कोमलतम भावनाओं व संघर्षमय जीवन को रेखाओं की सहायता से गुफाओं की दीवारों पर उकेरा है। इन चित्रों के

अध्येताओं ने इनके निर्माण के पीछे विशेष उद्देश्यों की परिकल्पना की है। उनकी मान्यता है कि आदिम मानव ने सर्वप्रथम अपनी भूख की पूर्ति के लिए पशुओं का शिकार आरम्भ किया और अपने काल की स्मृतियों को जीवित बनाने तथा जादू टोने के उद्देश्य से इन चित्रों का निर्माण किया होगा।

डॉ. रीता प्रताप के अनुसार, "गुहावासी मानव आखेट करने से पूर्व आदिम पशु का चित्र बनाकर कुछ जादू टोना, टोटका आदि करके अपने आखेट की सफलता पर विश्वास करता था। उसका विश्वास था कि जिस पशु को वह चित्र रूप में अंकित करता है, वह वश में सहजता एवं सरलता से आ जाता है।"[11]

भारत में शैल पर चित्रों की रचना का उद्गम उत्तर पाषाण काल के लगभग 10000 से 5000 वर्ष ईसा पूर्व माना गया है। इस समय कई चित्र निर्मित किये गए। इस युग का मनुष्य शिकार करते व आमोद-प्रमोद करते हुए चित्रित किया गया है। भारत में मुख्य रूप से आदमगढ़, रायगढ़, पंचमढ़ी, होशंगाबाद, मिर्जापुर, सिहंनपुर और राजस्थान में कोटा, बूंदी क्षेत्र के अलनिया, दर्रा, मेवाड़ क्षेत्र के चित्तौड़गढ़ एवं उदयपुर के बाठेड़ाकला में भी इस समय के ये शैल चित्र अनुपम उदाहरण रूप में मिलते हैं।

ये आरम्भिक चित्र खड़िया या गेरू जैसे लालरंग में पशु की चर्बी को मिलाकर बनाये जाते थे। सामान्यत: यह चित्र दो-तीन सरल रेखाओं से निर्मित किये जाते थे जिनमें गति एवं सजीवता मिलती है, "सिहंनपुर का एक चर्चित चित्र है, जिसमें कुछ आखेटक हाथ में पाषाण निर्मित हथियार लेकर चारों ओर से पशु को घेरे हुए हैं, प्रबल पशु की छींक से कुछ आखेटक हवा में उछल गए हैं और कुछ पृथ्वी पर गिरे हुए हैं।"[12] कलाकारों द्वारा चित्रों में मानवीय एवं पशु आकारों की शारीरिक संरचना का उचित अंकन किया गया है।

आदिम चित्रांकन के इस प्रागैतिहासिक युग के पश्चात भारतीय कला इतिहास और सिन्धु घाटी सभ्यता के सन्दर्भ मिलते हैं। यह समय पुरातन प्रस्तर युग के बर्बर जीवन व नव प्रस्तर युग के समय जीवन के संधिकाल वाला समय भी माना जाता है। इस समय सिन्धु घाटी के विशाल क्षेत्र में काली एवं लाल पकाई हुई मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का विकास हुआ था जिन पर मानवाकृतियाँ, वनस्पति, पशु-पक्षी तथा ज्यामितीय अभिप्रायों से गोल अर्धचन्द्राकार व तिरछी आलेखों का प्रयोग है। डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा के अनुसार, "यह सभ्यता 4000 से 3000 ईसा पूर्व के आस-पास विकसित हुई। सर मार्टिमार व्हीलर ने हड़प्पा का समय 2500 से 1500 ईसा पूर्व माना है।"[13] तथा "इस प्रकार की सामग्री 'भारत' तथा 'पाकिस्तान' में 'मोहनजोदड़ो, 'हड़प्पा', 'कुल्ली', 'मेंही', 'लोथल', 'झूंकर तथा झांगर', 'चन्दुदड़ो', 'अमरी नुन्दरानाल', 'झोब' नामक पर उत्खनन के पश्चात प्राप्त हुई है।"[14]

ऋग्वेद तथा अथर्वेद में आगे जाकर कुछ रूपाकारों का उल्लेख हुआ है, "ऋग्वेद में चमड़े पर बने अग्नि देवता के चित्र का उल्लेख आया है। इस चित्र को यज्ञ के समक्ष लटकाया जाता था और यज्ञ की समाप्ति पर लपेट दिया जाता था। इसी ऋग्वेद में भृगु ऋषियों के वंशजों को लकड़ी के काम में दक्ष बताया गया है। ऋग्वेद में यज्ञ शालाओं के चारों और की चौखटों पर बनी स्त्री देवियों की आकृतियों का भी उल्लेख आया है।"[15]

महाकाव्य युग (800-600 ईसा पूर्व) में महाभारत महाकाव्य में उषा-अनिरुद्ध की प्रेम कथा में चित्रांकन का उल्लेख मिलता है, "'विष्णुधर्मोतर पुराण' के 'चित्रसूत्र' में चित्रकला को कलाओं में सर्वोच्च स्थान दिया गया है।.... इस ग्रंथ में कहा गया है कि जिस कृति में आत्मीयता, वेदना (छंद) और अनिवर्चनीय रसमयता है, वही चित्र कहा जा सकता है।"[16] हरिवंश पुराण के प्रसंगानुसार वाणासुर की पुत्री राजकुमारी उषा ने स्वप्न में एक सुंदर युवराज

को अपने साथ वाटिका में विहार करते हुए देखा और वह उससे प्रेम करने लगी। जब उसकी परिचारिका चित्रलेखा को इस स्वप्न का ज्ञान हुआ तो उसकी विरहवेदना को समझते हुए कई महापुरुषों, देवताओं और युवराजों के छवि चित्र बनाकर उषा के सामने प्रस्तुत किये। उषा स्वप्न में देखे उस राजकुमार के चित्र को पहचान लेती है। इस प्रकार की और भी कथाएँ हैं जिनमें स्मृति के आधार पर व्यक्ति-चित्र बनाने की चर्चा मिलती है। जैसे, "महाभारत में सत्यवान के द्वारा बाल-काल में एक घोड़े की भित्ति पर चित्र अंकित करने का प्रसंग आता है।"[17] इसके अलावा मत्स्य, गरुण, अग्नि, पद्म तथा स्कन्द आदि पुराणों में भी चित्रांकन का प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलता है। रामायण में दीवारों, कक्षों, रथों तथा राजभवनों पर चित्र का उल्लेख है। रामायण के सुंदरकाण्ड व लंकाकाण्ड में भी लिखा है कि रावण की लंका में हनुमान जी को चित्रशाला और चित्रों से सुसज्जित राजगृह देखने को मिले थे।

इसके अलावा पाणिनी की 'अष्टाध्यायी', भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' कालिदास के 'रघुवंश' तथा 'मेघदूत' में भी चित्रण सम्बन्धी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। डॉ. रीता गुप्ता ने भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' के सम्बन्ध में लिखा है कि "सर्वप्रथम 'कला' शब्द का प्रयोग इसी ग्रंथ में किया गया है। वर्ण मिश्रण सम्बन्धी तकनीकों एवं विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है। रंगो द्वारा भावाभिव्यक्ति तथा रंगो के मन पर पड़ने वाले प्रभाव की भी इस ग्रंथ में चर्चा की गयी है।"[18] इस प्रकार अनेक कथाओं व ग्रंथो के माध्यम से आदिकालीन समाज में चित्रांकन की स्थिति व महत्त्व का बोध होता है।

50 ईसा पूर्व से 700 ई. तक के इस समय के प्रारम्भ में चित्रांकन को लेकर बौद्ध कलाकारों का दूसरा ही दृष्टिकोण रहा। यह दृष्टिकोण कला के प्रति अच्छा नहीं था। बौद्ध कला को विलासिता का द्योतक समझते रहे। यही कारण था कि प्राचीन बौद्ध विहारों में

पुष्पालंकार को छोड़ कर दूसरे विषयों पर चित्रकारी नहीं दिखाई देती। परन्तु इस दृष्टिकोण के बरक्स भी प्राचीन बौद्ध ग्रंथो, जातक कथाओं आदि में चित्रकला के विषय में जिन रुचिकर बातों का पता लगता है उन्हें अजन्ता, बाघ और नालंदा आदि गुफाओं की कलाकृतियों में देखा जा सकता है। भारत में इसकी महान विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। इन बौद्ध चित्रों का विस्तार और लोकप्रियता भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत तथा मध्य एशिया के अनेक देशो में बनी। बौद्ध कला की इस महान थाती का समृद्ध केंद्र अर्थात् सर्वोत्तम चित्राकृतियाँ 'अजन्ता' में देखने को मिलती हैं। इन चित्रावलियों में इस काल की आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की कला दिखाई पड़ती है। इन चित्रों का मुख्य विषय महात्मा बुद्ध का वास्तविक जीवन तथा उनके पूर्व जन्म की कथाओं का विवेचन और चित्रण है। औरंगाबाद से 102 किमी. की दूरी पर स्थित सतपुड़ा की ज्वालामुखी से निर्मित पहाड़ियों को काटती बघोरा नामक नदी के अर्धचंद्राकार रूप में ये तीस गुफाएं चित्र एवं मूर्तिकला से अलंकृत हैं, "अजन्ता की प्रत्येक गुफा में मूर्तियाँ, स्तम्भ तथा द्वार काटे गये हैं और भित्तियों पर चित्रकारी की गयी है। इस प्रकार अजन्ता की ये गुफाएँ 'वास्तुकला', 'मूर्तिकला' तथा 'चित्रकला' का उत्तम संगम हैं।"[19] इन गुफाओं में सातवाहन, वाकाटक, चालुक्य और गुप्त शासकों के समय में चित्र निर्माण हुआ, "अजन्ता में बुद्ध की जातक कथाओं का अंकन करने वाली गुफाओं में से वर्तमान में गुफा संख्या 1,2,9,10,16,17 में ही चित्र सुरक्षित रह गए हैं। इन चित्रों में बोधिसत्व पद्मपाणी बोधिसत्व वज्रपाणी, महाहंस जातक, कपिजातक, सर्वनाश, मर विजय छ: दंतजातक आदि कथाएं प्रसिद्ध हैं। गुफा संख्या 1 की बायीं भित्ति पर पद्मपाणि के विशाल चित्रों में बोधिसत्व को विश्व पर असीम करुणा व्यक्त करते हुए चित्रित किया गया है।"[20] उनकी भावमग्न आँखे इस तरह से नीचे की ओर झुकी हुई हैं कि मानो

संसार के कष्टों को दूर करने पर विचारमग्न हो। इस सम्पूर्ण चित्रों में माधुर्य एवं कोमलता के भावों के साथ ही मानवीय एवं पशु आकृतियाँ भी उत्तम चित्रित हुई हैं।

अजन्ता के ये चित्र दीवारों पर विशिष्ट तकनीक से बनाये गए हैं। सर्वप्रथम गुफाओं का निर्माण कर, उनकी दीवारों पर खड़िया, गोबर, बारीक बजरी आदि से लेप कर गुफा की खुरदुरी दीवार पर प्लास्टर की तरह लगाया जाता था। फिर उसके ऊपर चूने का लेप लगाकर गीले प्लास्टर वाली दीवारों पर ही खनिज, रंगो द्वारा चित्र उकेरे जाते थे, "इनमें अंग विन्यास, मुख-मुद्रा, भावभंगिमा और अंग-प्रत्यंगों की सुन्दरता, नाना प्रकार के केशपाश, वस्त्राभरण आदि तत्वों को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है और वे दर्शक की सौन्दर्यानुभूति पर स्थाई प्रभाव अंकित करते हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष, तड़ाग और कमल आदि के चित्र भी बड़ी निपुणता से बनाए गए हैं। इनमें सुंदर रंगो का प्रयोग किया गया है। चिन्तन इतना प्रशस्त और नियमित है कि प्रकृति और सौन्दर्य की आत्मा से साक्षात्कार कर लेने वाले कलाकार के अतिरिक्त कोई दूसरा उन्हें अंकित नहीं कर सकता।.... अजन्ता के कुछ चित्र इतने भावपूर्ण हैं कि उनमें चित्रित स्त्री पुरुषों की मानसिक दशा का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन होता है। वे कैमरे से खिंची हुई फोटो के समान सही अनुकृति है, किन्तु निर्जीव नहीं है, उनमे रक्त प्रवाहित होता है और वे जीवित सी लगती है। उनकी मुद्राओं में गति है और चेहरों पर भाव अंकित है।"[21]

श्रीलंका में स्थित 'सिगरिया' की गुफाओं में अजन्ता की इस शैली का परिपक्व रूप हमें देखने को मिलता है। वहीं भारत के बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल गुफाओं के चित्रों में अजन्ता के ही चित्रों की छाप है।

2.2.2 : पूर्व मध्यकालीन चित्रांकन (700 से 1500 ई. तक) :

अजन्ता की चित्र परम्परा का आठवीं शताब्दी में राजनीतिक कारणों से अधोपतन होने लगा। विदेशी आक्रान्ताओं ने देश पर आक्रमण कर सुखद वातावरण में अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी। मध्यकाल में अजन्ता की यह भित्ति चित्र परम्परा प्राय: नष्ट होने लगी। सम्भवत: मध्यकालीन परम्परा में विकसित लघु चित्रांकन की परम्परा का कारण भी यही विदेशी आक्रान्ताओं का भय ही था। इसी समय भारत के उत्तर से पश्चिम भाग में जैन धर्म के प्रबल होने से जैन पोथी चित्रण का प्रचलन शुरू हुआ। मध्य युग के आरम्भिक लघु चित्र पाल शैली में हैं। लघु चित्रों की यह परम्परा एक ओर बंगाल-बिहार के क्षेत्र में पाल शैली तो दूसरी और पश्चिम भारत में जैन शैली के रूप में विकसित हुई।

ये लघु-चित्र ताड़पत्रों पर चित्रित किये जाते थे। अब तक हुए शोध अध्ययनों में ऐसे कई तथ्य उत्तर-भारत के गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रो में मिले हैं जिनमें जैन धर्म आधारित प्रज्ञापरमिता, साधनमाला, करणदेवगुहा नामक ताड़पत्रीय ग्रंथ सचित्र 'पाल शैली' में चित्रित किये गए हैं। जैन शैली के चित्र वाले ग्रंथ सुपासनाचरियम, श्रावकप्रतिकर्माणसूत्रघूर्णी, बालगोपालस्तुति, गीतगोविन्द नामक ग्रंथ ताड़पत्रों पर बने हुए हैं।

'पाल शैली' के चित्र महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म के देवी देवताओं के हैं। इन पर अजन्ता का प्रभाव होते हुए भी इनमें वह लयात्मकता न होकर एक जैसी मोटाई लिए रेखाएँ खींची गई हैं। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में, "इनमें स्वतंत्र छंद और गतिमानता की कमी है, अंकन की परम्परा में जकड़े होने के कारण लगता है ये चित्र हिल नहीं पाते। नाक इनमें विशेष लम्बी होती है और परली आँख का कुछ अंश दिखता रहता है। चेहरा एकतरफा होता है।"[22] श्वेताम्बर जैन पोथियों पर इस शैली के चित्र अधिक मिलते हैं, "जिनमें चेहरों से

बाहर निकली हुई परली आँख क्षीणकटि व स्पष्ट रेखांकन इस शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं।"[23] परन्तु, चित्रांकन के इस रूप में भी, "10 वीं से 15 वी शताब्दी तक (500 वर्षों) की चित्रकला की उन्नत परम्परा को जीवित रखने का श्रेय 'पाल', 'जैन', 'गुजरात' एवं 'अपभ्रंश' शैलियों को जाता है।"[24]

गुजरात शैली के सचित्र ग्रंथ बालगोपाल स्तुति, दुर्गासप्तशती तथा रहस्यरति आदि हैं, जिन्होंने अजन्ता एलोरा व बाघ के चित्रों को लघु चित्र रूप में सुरक्षित रखा है। राजपूत, मुगल शैली तथा प्राचीन भित्ति चित्रों के बीच चित्रकला में होने वाले परिवर्तनों का इतिहास भी इन चित्रों के माध्यम से जाना जा सकता है

2.2.3 : उत्तर मध्यकालीन चित्रांकन (1550 से 1900 ई. तक) :

16वीं शती के उत्तरार्ध में, भारत में चित्रांकन के दो रूप इस समय प्रचलित थे - मुगल कला और राजस्थानी कला। इनमें मुगल कला मुगल सम्राटों के आश्रय में ईरानी चित्रकला के आधार पर विकसित हुई थी, जिसका मूलाधार अजन्ता की चित्रकला थी, "18वीं शती में, प्रकृति के सुरम्य प्रदेशों में, मुगल चित्रकला और राजस्थानी चित्रकला के संयोग से 'पहाड़ी चित्रकला' का उद्गम हुआ जो 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक छाई रही।"[25]

- **मुगल चित्रों का स्वरूप** :

लघु चित्र परम्परा में मुगल चित्र मुगलों के समय में ईरानी व भारतीय कला तत्वों के सम्मिश्रण का परिष्कृत रूप है, "भारतीय कला की बहती धारा में जब-जब नए स्रोत आकर मिले हैं, तब-तब उसमें विशेष गति और सुन्दरता आई है। इरानी कला का भारतीयकरण वही

नयी धारा थी, जिसने भारत को एक नयी शैली दी।"[26] यह नयी शैली मुगल चित्रांकन की थी जिसकी नींव भारत में बाबर द्वारा डाली गयी तथा इसका हुमायूँ काल से प्रारम्भ हुआ। ईरानी चित्रकार मीर सैय्यद अली जुदाई और ख्वाजा अब्दुस्म्द 'शिराजी' को हुमायूँ ने अपना दरबारी चित्रकार नियुक्त कर इन्हीं के सानिध्य में अकबर को कला की आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करवाई। अकबर पहले ऐसे शासक रहे जिन्होंने अपने राज्यकाल में चित्रशाला की स्थापना कर न केवल सांस्कृतिक उत्थान में विशिष्ट योगदान दिया बल्कि उनकी चित्रशाला में पूरे देश से कार्य करने आने वाले चित्रकारों का अकबर स्वयं अवलोकन भी करते थे तथा समय-समय पर कलाकारों को सम्मानित भी करते थे। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के मतानुसार, "अकबरकालीन चित्रों में पोथी-विषयक चित्र बहुत हैं। फ़ारसी हिंदी संस्कृत की अनेक पुस्तकों को चित्रों द्वारा स्पष्ट और अलंकृत किया गया। उस काल में अनेक संस्कृत ग्रंथो का फ़ारसी अनुवाद भी हुआ जिसमें अनुपम कलाकारों के चित्र भर गए।" [27] अकबर के समय चित्रांकन परम्परा का जो भारतीय स्वरूप विकसित हुआ उसने जहाँगीर के समय अपने उत्कर्ष को प्राप्त किया। जहाँगीर चित्रप्रेमी तथा चित्रकार के साथ प्रकृति-प्रेमी, पशु-प्रेमी, उद्यान-प्रेमी व लेखक भी था, इसलिए उसने अपने चित्रों में पशु- पक्षी और प्रकृति की सुंदर वस्तुओं को विषय रूप में चित्रित करवाया। यह युग इस दृष्टि से चित्रांकन का सुन्दरतम काल है जिसके लिए भगवतशरण उपाध्याय का कथन है कि "जहाँगीरकालीन कला चित्रकला का स्वर्ण युग है... जहाँगीर के समय की चित्रकला के सम्बन्ध में तीन चार बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय है- ईरानी रूप, घटनापरक रूपायन, प्राकृतिक सौन्दर्य और स्वभाविकता।... प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन जितना और जितनी दक्षता से जहाँगीर के चित्रकारों ने किया, उतना कभी नहीं हुआ।... पेड़-पौधों का इतना सुंदर रूपांकन अन्यत्र नहीं मिलता। पत्ता-पत्ता

जैसे जी उठता है, हिल उठता है। पहाड़, नदी, बादल चुप्पी में भी जैसे अपनी बातें कह उठते हैं।"[28]

जहाँगीर के बाद शाहजहाँ की स्थापत्यकला में अधिक रुचि होने के कारण चित्रांकन पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा। उसमें शिथिलता आने लगी। भगवतशरण उपाध्याय का मानना है कि "शाहजहाँ काल की चित्रकला की दो विशेषताएँ चित्र में अधिकाधिक नारी रूपों का निरूपण और इसाई धर्म का चित्रण है।"[29] कला के मुगल काल में पूर्णतः दरबारी हो जाने के कारण औरंगजेब के समय में कला व साहित्य की यह धारा अवरुद्ध हो गयी साथ ही औरंगजेब की अनेक तस्वीरों का मिलना इस बात की ओर संकेत है कि कला तब भी बराबर गुप्त रूप से ही सही पर बनी हुई थीं। मुगल चित्रों का यह गौरव मुहम्मदशाह के जमाने तक तो बना रहा पर नादिरशाह और अहमद अब्दाली के आक्रमण के बाद यह बिखर गया। चित्रकारों के परिवार दिल्ली आगरा छोड़ अन्य प्रान्तों के नए दरबारों में आश्रय लेने लगे जिससे इन मुगलिया चित्रकारों के वहाँ जाने से मुगल चित्रांकन कला का प्रभाव वहां की चित्रकला पर भी पड़ा।

- **राजस्थानी चित्रों का स्वरूप** :

चित्रांकन की इस पद्धति पर जैन व गुजरात चित्रशैली का प्रभाव माना जाता है। डॉ. लोकेश चन्द शर्मा के अनुसार, "जो प्रकृति चित्रण राजपूत कला में देखने को मिलता है वह सब गुजरात के आस-पास में काफी मात्रा में था। 'रागमाला' के के चित्र भी गुजरात के पास में ही प्रारम्भ हुए (लाट देश में)।" [30] आरम्भिक राजस्थानी चित्रों का स्वरुप चौरपंचाशिका (1540 ई.) के ग्रंथ चित्रों में दिखाई देता है। यह चित्र कागज व वसली पर बने होते थे। धार्मिक विषय सामाजिक जनजीवन, युद्ध एवं शिकार तथा रागमाला एवं श्रृंगार से सम्बन्धित चित्र इन

चित्रों की विषयवस्तु होते थे जिनमें श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ, महाभारत, रामायण, भागवतपुराण आदि के चित्र तीज त्यौहारों जैसे होली-दीपावली के चित्र, ऋतु बारहामासा से सम्बन्धित चित्र, राग रागनियों के चित्र तथा नायिका-भेद आदि के चित्र मुख्यत: उकेरे जाते थे, "16वीं शताब्दी में इस परिवर्तन ने चित्रकला का रूप ही बदल दिया। वैष्णव चित्र में अब जीवन का उल्लास और स्फूर्ति मिलती थी। उनमें अब रंगो का बोध ही नहीं, सौन्दर्यानुभूति भी होती थी। सूर-तुलसी के वात्सल्य वर्ण में जो लालित्य है वही बालकृष्ण की लीलाओं में रंगो द्वारा अंकित किया गया है।"[31]

इन चित्रों में चटक रंगो लाल, पीला, नीला, हरा, काला, सफेद आदि का विशुद्ध रूप से प्रयोग किया जाता था। चित्रों के बाह्य भाग के चारों तरफ लाल तथा सिंदूरी रंग से बॉर्डर बनाया जाता था। प्राकृतिक सौन्दर्य का अलौकिक चित्रण भी इन चित्रों की विशेषता थी। अधिकांश चित्र हस्तनिर्मित कागज पर बनाए जाते थे तथा उस पर अंकित रेखाओं में गति, गोलार्ध एवं कोमलता परिलक्षित होती थी। अधिकतर चित्र छोटे आकार में बनाये जाने के कारण इन्हें लघुचित्र भी कहते हैं।

- **पहाड़ी चित्रों का स्वरूप :**

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हिमालय की घाटियों काँगड़ा, बसौली, गुलेर, नूरपुर, चम्बा, कुल्लू, कश्मीर क्षेत्र में चित्रांकन की यह उन्नतशील भारतीय लघुचित्र परम्परा पुष्पित व पल्लवित हुई। 18वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य स्थानीय कलाकार और मुगल दरबार से निराश्रित कलाकार आश्रय की खोज में पहाड़ी क्षेत्र की ओर गये। उनके भीतर के दरबारीपन की जकड़ और अभिजात्य को वहाँ की परिस्थितियों ने तोड़कर काँगड़ा, बसौली, गुलेर, मंदी आदि के शासको से संरक्षण दिलाया। इस संरक्षण में ही इन कलाकारों ने कृष्ण

भक्ति श्रृंखला का निर्माण किया। इनके द्वारा निर्मित चित्रों में पहाड़ों का आत्मीय सौन्दर्य और प्रकृति का सुकुमार रूप बसा है जिसकी प्रशंसा करते हुए भगवतशरण उपाध्याय जी लिखते हैं, "एक नया अभिराम, निर्द्वंद जीवन इन नए चित्रों में चमक उठा। अतीत और वर्तमान के प्रति आदर से पहाड़ी चित्रकार का मस्तक झुका। एक से एक हजारों चित्र उसकी जादू की छड़ी से निकलने लगें। सुकुमार कलेवर, मनोहर वपुकान्ति, स्पष्ट भावधारा, गतिमान घटना पहाड़ी चित्रों में अभिव्यक्त हुई।"[32]

इन पहाड़ी चित्रों में रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण, गीतगोविन्द की अनंत स्थितियाँ भाव सहित अंकित हुई हैं। रागमाला, भागवत आदि में जहां एक और कृष्ण की अनेक ध्वनियाँ मध्यकालीन भावना और रूचि का विशेष ध्यान रखते हुए चित्रित हुई हैं वहीं ब्रज की प्रधान भाव-भंगिमाएँ और विश्वास, कृष्ण-केलि, गोप-गोपी रास क्रीड़ा, आदि भी चित्रों के माध्यम से अद्भुत रूप में उकेरे गए हैं। उसके साथ ही पहाड़ी क्षेत्र के नैसर्गिक सौन्दर्य को भी कोमल रंग और रेखाओं के द्वारा चित्रकारों ने जीवित कर दिया है। आज ऐसे हजारों चित्र हैं जो पहाड़ी चित्रांकन के अग्रदूत बनकर भारतीय चित्रांकन परम्परा में स्वयं को आगे बनाये रखने की दौड़ में हैं।

2.2.4 : आधुनिक काल में चित्रांकन :

औरंगजेब के निधन से मुगल साम्राज्य निर्बल हो गया था जिसके कारण कलाकार मुगल दरबार को छोड़कर आश्रय की खोज में पहाड़ी, राजस्थान और पटना, बंगाल आदि क्षेत्रों की ओर जाने लगे। इस उथल-पुथल के अनिश्चित वातावरण से दिल्ली के कुछ कलाकार भी आश्रय की खोज में मुर्शिदाबाद, पटना तथा कोलकाता की तरफ आ बसे। यहाँ

इन चित्रकारों ने एक विशिष्ट ही शैली को जन्म दिया जो 'पटना शैली' अथवा 'कम्पनी शैली' के नाम से जानी जाती हैं।

17 वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार और उद्योग के उद्देश्य से भारत आई और उसने यहाँ बिहार, चेन्नई, कोलकता जैसे शहरों में अपना वर्चस्व कायम कर लिया। धीरे-धीरे इसने पूरे भारत पर ही अपना ऐसा कब्जा जमाया कि व्यापार के साथ-साथ भारतीय समाज व राजकाज के कार्यों में हस्तक्षेप कर सम्पूर्ण देश की राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्थाओं पर एकाधिकार कर लिया। आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रमुख केंद्र पटना व बंगाल था। यहाँ कम्पनी के वे उच्च अधिकारी रहते थे जिन्हें भारतीय कला से प्रेम था। इनके द्वारा 'पटना शैली' के ये चित्र पर्याप्त मात्रा में खरीदे जाते थे।

पटना शैली को कम्पनी का यथेष्ट संरक्षण मिलने के कारण ही इसे 'कम्पनी शैली' नाम दे दिया गया। राजनीतिक दृष्टि से, "यह वह समय था जब मुगल सम्राट औरंगजेब के कट्टरपूर्ण रवैये से तंग आकर कलाकार संरक्षण की खोज में बंगाल व पटना की और आ गये। पटना में आकर इन्हीं दरबारी चित्रकारों ने मुगल व स्थानीय लोकशैली से प्रेरणा ग्रहण कर इस नयी शैली को जन्म दिया।"[33]

पटना शैली के चित्रों में नवीनता के साथ मुगल शैली का रेखांकन और भारतीय चित्रों वाली सपाट रंगयोजना का भी प्रयोग होने लगा। इस शैली के प्रमुख विषय सामाजिक व दैनिक जीवन के क्रियाकलाप, पशु-पक्षी व व्यक्ति चित्र रहे हैं। पटना शैली के प्रमुख चित्रकार ताराचन्द्र और गोपाल चन्द्र हैं।

आधुनिक भारतीय कला का उद्भव बंगाल स्कूल के कला आन्दोलन से है। इस आन्दोलन के प्रणेता प्रो. ई. पी. हेवेल, डॉ. आनंद कुमार स्वामी, ए.के. गागुली.,

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का इसमें विशेष योगदान रहा। ये चित्रकार के साथ चिन्तन व शिक्षक भी थे जिनके नेतृत्व में बंगाल के युवा कलाकारों एस. एन. गांगुली., दलाल बोस, हकीम खान, शैलेन्द्रनाथ डे, अमित हाल्दर आदि चित्रकारों ने एक दल बनाया। इस दल के कलाकारों ने न सिर्फ भारतीय चित्रांकन की परम्परा का प्रशिक्षण प्राप्त किया बल्कि कम्पनी तथा विदेशी कलाकृतियों का भी अध्ययन किया। यह दल कला के नवजागरण आन्दोलन के रूप में उभरा जिसमें भारतीयता पर अधिक जोर दिया गया। देश में मुंबई, चेन्नई, कोलकाता,लखनऊ, जयपुर आदि स्थानों पर कला संस्थान खोलने पर शिक्षकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु बंगाल स्कूल के कलाकारों ने वहाँ जाकर शिक्षण किया तथा कलाकार के रूप में सदाचारिता का प्रसार किया। इस भारतीय भावना के अनुरूप गुजरात के रविशंकर रावल ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा राजस्थान में रामगोपाल विजयवर्गीय, पी.अन.चोयल, देवकीनंदन शर्मा तथा कृपाल सिंह शेखावत ने बंगाल शैली की रचनाएँ की, "बंगाल में कलाकारों ने इस शैली की वॉश पद्धति को सीखकर उसे परम्परागत भारतीय चित्रकला एवं विषयवस्तु के साथ जोड़ दिया। इनकी आकृतियों में भारतीय भित्तिचित्र परम्परा के सपाट रंग व राजस्थानी, मुगल रेखाओं व तकनीक में छाया प्रकाश का प्रभाव भी दिखाई देता है।"[34] ब्रिटिश सरकार द्वारा विदेशी तर्ज पर शिक्षा देने के उद्देश्य से लाहौर, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई तथा भारत के विभिन्न राज्यों में कला शिक्षण हेतु विद्यालय खोले गए। इन कला संस्थानों में शिक्षा प्राप्त कलाकारों के यूरोपीय कला पद्धति से कार्य भेजने के परिणामस्वरुप बंगाल शैली दम तोड़ने लगी। अब कला में यूरोपीय पद्धति से कार्य करने वाले कलाकार देश में बहुत अधिक हो चुके हैं, जिनमें राजा रवि वर्मा सर्वोपरि कलाकार कहे जा सकते हैं। इनकी चित्र-रचना तैलचित्र पद्धति में है तथा प्रकृति चित्र, व्यक्ति चित्र, धार्मिक-पौराणिक भारतीय कथानकों पर आधारित है, जिनमें रावण द्वारा सीता के हरण का चित्रांकन

महाकाव्य के वर्णन में अपने कल्पना के प्रयोग से कुछ इस तरह से हुआ है जिसे सहज स्वीकारा तथा उनकी कला को खूब सराहा गया है।

इससे स्पष्ट है कि भारतीय चित्रकला में चित्रांकन का स्वरूप निरंतर परिवर्तित होता रहा है। देश-काल वातावरण का प्रभाव जिस प्रकार साहित्य जगत को प्रभावित करता रहा है उसी प्रकार, चित्रकला जगत को भी। आदिकाल में भावभिव्यक्ति के लिये आदिमानव तथा बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध जीवन की कथाओं को गुफा, कंदराओं तथा भित्तियों पर रेखाओं और रेखाओं के उभार द्वारा चित्रांकित किया गया जो मध्यकाल में जैन धर्म, पाल, मुगल तथा राजपूत राजाओं के प्रभाव में धार्मिक ग्रंथो, काव्यग्रन्थों तथा व्यक्ति चित्रों आदि विषयों को आधार बना कर लघु चित्रों के रूप में कपड़ों पर भी अंकित होने लगें। आगे चलकर पहाड़ी क्षेत्रों के शांतिपूर्ण वातावरण तथा पहाड़ी सौन्दर्य से प्रभावित होकर पहाड़ों की प्राकृतिक सुषमा भी चित्रांकन का विषय बन गयी। इन विषयों को सभी क्षेत्रों के प्रभाव से विशिष्ट रूप में रंगो के माध्यम से अंकित किया गया। आधुनिक काल में चित्रांकन का यही स्वरूप आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य चित्रकला की विदेशी तथा आधुनिक शैली से काष्ठफल्कों तथा कागजों पर उतरने लगा है। जिसके विषय भी समय के साथ दरबार तथा श्रृंगार के साथ कुछ अलग और आधुनिक तथा अधिक यथार्थवादी हो चुके हैं।

2.3 : चित्रांकन की विभिन्न शैलियाँ :

भारत अनेक धर्मो, संस्कृतियों, बोली व भाषा का देश रहा है। देश की इन विविधताओं में कला का रूप भी पीछे नहीं है क्योंकि, देश काल वातावरण का प्रभाव कला पर पड़ना स्वभाविक ही है चाहे फिर वह काव्य हो या काव्यचित्र ; चित्र हो या चित्र काव्य।

अपनी इसी प्रभावशील विशिष्टता के कारण भारत देश के कई राज्यों में अलग-अलग समय पर अलग अलग चित्रांकन की शैलियां प्रकाश में आती रही हैं जो भारतीय संस्कृति, कला व साहित्य के परचम को लहराती रही हैं। इन शैलियों का चित्रांकन की दृष्टि से अध्ययन इस प्रकार है -

- **पाल शैली :**

पाल शैली भारत के पूर्वी क्षेत्र बिहार व बंगाल में चित्रांकन की प्रचलित शैली थी। इस शैली के चित्रांकन का समय लगभग 730ई. से 1197ई. तक रहा है। इसके चित्र साक्ष्य आज भी मिलते हैं। इस शैली का सम्बन्ध पाल राजाओं से होने के कारण इसका नाम 'पाल शैली' पड़ा। पाल शैली के चित्रों में हमें दृष्टांत चित्र ही अधिक मिलते हैं। इस शैली के चित्र ताड़पत्रों पर निर्मित हैं, जिनके चित्र जातक कथाओं पर आधारित हैं।

इस शैली में ताड़पत्रों के बीच में चित्र बने हैं तथा चित्र के दोनों और पाँच-छ: रेखाओं में लिपि अंकित है। इन पांडुलिपियों में किसी चित्रकार का नाम नहीं मिलता। इनमें भगवान बुद्ध का ही जीवन-चित्रण जातक कथाओं के रूप में अधिक हुआ है। कुछ ऐसी ही चित्रित पांडुलिपियाँ नालंदा महाविहार और विक्रमशिला तथा देव बिहार में भी रची गयी हैं। तिब्बती इतिहासकारों ने धीमान तथा बितपाल नामक चित्रकारों को इस शैली का संस्थापक माना है। इस शैली को कुछ विद्वान नाग शैली भी कहते हैं। पाल शैली के चित्रों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- पाल शैली के ये चित्र अधिकांशत: पोथी चित्र हैं जो ताड़पत्र पर बने हैं और आकार में लघु हैं। जो स्फुट चित्र इस शैल के प्राप्त हैं, वे बंगाल के पट-चित्र हैं।

- इन चित्रों में मानवाकृतियों के चेहरे सवाचश्म अधिक हैं। सर चपटे तथा नाक लम्बी है जो परले गाल से आगे निकली हुई होती है। आँखे बड़ी-बड़ी व पास-पास हैं। आकृतियों के हाथों तथा पैरों की मुद्राओं में अकड़न सी प्रतीत होती है जिसके कारण इन चित्रों में सजीवता का अभाव प्रतीत होता है।
- यह चित्र आकार में लघु हैं जिनका अंकन दोनों और से लिपिबद्ध पृष्ठ के बीच में किया जाता था। इसमें लाल, नीला प्रकृति से निर्मित रंगो द्वारा, सफ़ेद खड़िया, काला तथा इन रंगो के मिश्रण से बने गुलाबी, बैंगनी और फाखताई रंगों का प्रयोग मिलता है।
- इस शैली के चित्रों में काले रंग की रेखायें निब जैसी किसी वस्तु से खींची हुई लगती हैं, साथ ही प्रकृति चित्रण में आकाश के स्थान पर सिर्फ नारियल के पेड़ों का ही चित्रण हुआ है।

पाल शैली के चित्रों की ये पोथियाँ देश-विदेश के आजायबघरों तथा संग्रहालयों में सुरक्षित देखने को मिलती है।

➢ **जैन शैली :**

चित्रांकन की यह शैली पश्चिम भारत, दक्खनी पश्चिमी राजस्थान में पायी गयी है तथा इन क्षेत्रों पर जैन धर्म का विशेष प्रभाव होने के कारण ही इसे 'जैन शैली' कहा जाता है। चित्रांकन की यह शैली सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्ष के समकालीन 'पल्लव राजा महेन्द्रावर्मन' के समय में बनी सित्तन्नवासल गुफा में निर्मित मूर्तियों व चित्रों में दृष्टिगोचर होती है। इस शैली के सबसे प्राचीन उदाहरण ताड़पत्र पर अंकित 'कालकाचार्य कथा' तथा 'कल्पसूत्र' के वे दृष्टांत चित्र हैं जिनमें पार्श्वनाथ, नेमीनाथ तथा ऋषभनाथ आदि के साथ अन्य

बीस तीर्थकर महात्माओं के चित्र हैं, "इन कलाकारों ने अति सूक्ष्म रेखाओं द्वारा विराट भावों को जिस प्रकार समाविष्ट किया है वह अन्यत्र नहीं देखने को मिलता।"[35] मुनि कांतिसागर ने जैन चित्रों के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया हैं जिनमें 'श्रीकल्प सूत्र' आदि है। जैन शैली के नमूने अनेक व्यक्तिगत संग्रहों लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि के संग्रहालयों में वस्तुचित्र के रूप में देखने को मिलते हैं, इसी प्रकार, "जिन भद्रसूरि के समय का जैन शास्त्रों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालने वाला एक बहुमूल्य एवं वृहद् पट-चित्र जिसको मुग़ल राजपूत शैलियों के पूर्व का सर्वाच्च पट-चित्र कहा जाता है, 'ब्रिटिश म्यूजियम' में सुरक्षित है। 'नाहटा कला भवन' बीकानेर में भी इस प्रकार के सुंदर वस्त्रचित्र मिलते हैं।"[36] इस शैली के चित्रों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- जैन शैली के चित्र आरम्भ में जैन पोथियों पर ही अधिक मिलते थे पर चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में ये चित्र कागज पर भी अंकित होने लगे।
- "इन चित्रों में नेत्रों की बनावट विशेष होती है। आम की फाँक-सी दूर तक फैली कोनो वाली आँख, दूसरी आँख का दीखता हुआ भाग,गरूड़ की सी आगे निकली हुई नाक, छोटी ठुड्डी, ऐंठी अंगुलियाँ आदि इन चित्रों की विशेष पहचान है।"[37]
- जैन शैली के चित्रों में रंगो की विविधता का कम प्रयोग हुआ है तथा लाल व पीले रंगो का प्रयोग इन चित्रों में अधिक मिलता है।
- जैन शैली के चित्रों में वस्त्र रूप में धोती का सुंदर चित्रांकन हुआ है। साधुओं के वस्त्र मोती के समान सफेद व सोने के रंग के दिखाये गए हैं साथ ही उसके आभूषणों मे माला व मुकुट का विशेष प्रयोग हुआ है।

- 'नेमिनाथ चरित', 'कथारत्नसागर', 'त्रिपष्टिश्ल्गर पुरूष चरित' तथा 'अंग सूत्र' आदि बहुत से जैन ग्रंथो में इस शैली के चित्रांकन का प्रमाण मिलता है। इस शैली के कलाकारों में मार्कण्डेय पुराण, दुर्गासप्तशती, रति रहस्य व कामसूत्र ग्रंथो से सम्बन्धित ग्रंथो का भी जैन शैली में चित्रांकन किया गया है।

इसी जैन शैली का प्रगतिशील रूप हमें आगे राजपूत तथा चित्र शैली में देखने को मिलता है।

➢ **अपभ्रंश शैली :**

गुजरात में प्राप्त चित्रों का सबसे बड़ा संग्रह जैन पोथियों से सम्बद्ध था पर कुछ जैनेतर और वैष्णवों के ग्रंथो से सम्बन्धित चित्र गुजरात के बाहर अनेक प्रदेशों से भी प्राप्त हुए थे इसलिए इन चित्रों की शैली का निर्धारण व सामग्री वर्गीकरण की समस्या बनी रही। प्रारम्भ में इस शैली को जैन शैली कहा गया, फिर मालवा राजस्थान और गुजरात और दूसरे सम्प्रदाय के ग्रंथ में चित्रों की व्यापकता के आधार पर इसे 'गुजरात शैली' या 'पश्चिमी भारतीय शैली' कहना उपयुक्त समझा गया किन्तु, इस शैली के चित्रों का पश्चिम भारत के अतिरिक्त भारत के अन्य स्थानों से भी प्राप्त होने के कारण 'रायकृष्ण दास जी' ने इस शैली को 'अपभ्रंश शैली' नाम दिया। हिन्दी साहित्य में यह काल प्राकृत भाषाओं की रचना का काल है, जिसमें पिंगल, डिंगल व लोक भाषाओं में वीर काव्य की रचना हुई। इसी आधार पर साहित्य में इस काल को वीरगाथा काल, चारण काल या अपभ्रंश काल के नाम से पुकारा जाता है। साथ ही इस अपभ्रंश शब्द से कला की समस्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी परिलक्षित हो जाती है। ये शैली अपनी मूल विशेषताओं को खोकर अजन्ता का भ्रष्ट रूप प्रतीत होती है। अपभ्रंश शैली भारत में 11वीं से 16वीं शताब्दी तक प्रचलित रही। इस शैली के सादे व रंगीन सैकड़ो चित्रों से सुसज्जित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'चित्रकल्पद्रुम' सर्वप्रथम अहमदाबाद के श्री साराभाई मणिक लाल

द्वारा प्रकाशित कराया गया जिसका लिपिकाल 1415 ई. का जौनपुर में उपलब्ध ग्रंथ है। बंगाल लाहौर तथा उड़ीसा में भी ऐसे चित्र मिलते हैं। 15वीं शताबदी के लगभग गुजरात तथा मेवाड़ में उदय होने वाली राजपूत शैली जिसके फलस्वरूप भारतीय चित्रकला की प्रसुप्त चेतना उद्बुद्ध हुई, वह अपभ्रंश शैली का ही परिष्कृत रूप है। डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा के शब्दों में, "राजपूत शैली में जो विषय वस्तु मिलती है, जिसमें रागमाला, श्रृंगार-कृष्णलीला आदि हैं उसकी सामग्री सब अपभ्रंश शैली से ली गयी है।"[38]

अपभ्रंश शैली की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- अपभ्रंश शैली में मानवाकृतियाँ विशिष्ट रूप से चित्रांकित हुई हैं। इन चित्रों में एक आँख चेहरे की सीमा रेखा से बाहर वाली जगह से निकली हुई होती है। आँखे परवल के आकार की जिसमें आँखों के काजल की रेखा कान तक गयी हुई चित्रांकित की जाती थी। नुकीली नाक, दोहरी ठुड्डी, हाथ मुड़े हुए तथा हाथों की उँगलियाँ ऐंठी हुई चित्रित की जाती थीं। कमर का भाग अति क्षीण होता था। इन चित्रों को देखने पर चित्रांकित मानवाकृतियाँ "रुई के गुड्डों या गुजरात की कठपुतलियों के समान प्रतीत होती है।"[39]
- इस शैली के चित्रों में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार आलंकारिक रूप में है कि "पेड़ों का अंकन गुलदस्ते जैसा किया गया है। पशु-पक्षी कागज के खिलोने या कपडे के गुड्डे जैसे प्रतीत होते है।"[40] इससे इसकी स्वभाविकता नष्ट हो गयी है।
- अपभ्रंश शैली के चित्रांकन में अधिकांशत: चटकदार व उष्ण रंगो जैसे पीले और लाल रंगो का प्रयोग हुआ है।

इन चित्रों में प्रयुक्त स्वर्ण के कारण ये चित्र सुंदर दिखाई देते हैं, कहीं-कहीं रंग योजना अच्छी बन पड़ी है और मुद्राओं में अकड़न के बावजूद गति का आभास होता है।

➢ **मेवाड़ शैली** :

राजस्थान शैली में मेवाड़ शैली का विशेष स्थान है। इस शैली की सबसे प्राचीन चित्राकृति 1423ई. के लिपि काल वाली 'रुपासनाचर्यम' है। 16वीं शताब्दी में राजस्थान ने अपनी नवीन शैली मेवाड़ शैली विकसित की जिसका मुख्य केंद्र उदयपुर था। इस शैली का विकास मुगलों के आने के पश्चात् भी होता रहा। मेवाड़ चित्रांकन शैली में धार्मिक पुस्तकों जैसे - भागवतपुराण, रामायण आदि का चित्रण अधिक हुआ है। उदयपुर के शाहबदीन नामक चित्रकार ने सन् 1648 में भागवतपुराण की संचित्र प्रति का निर्माण इस शैली में किया जिसकी एक-एक प्रति जोधपुर तथा कोटा के पुस्तकालयों में भी है। रामायण पर 1649ई. में चितौड़ के कलाकार मनोहर द्वारा चित्रांकित ग्रंथ 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स म्यूजियम' बम्बई में सुरक्षित है। इस शैली से निर्मित रागमाला के चित्रों में परिपक्वता है तो राग-रागनियाँ, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका का भी सुंदर चित्रण इस शैली में हुआ है। नायक-नायिका भेद तथा दरबारी जीवन का चित्रण यहाँ के चित्रकारों प्रमुख विषय रहा है। पृथ्वीराज रासो तथा दुर्गा महात्म्य का भी इस शैली में अद्भुत चित्रांकन हुआ है। मेवाड़ शैली के चित्रांकन की विशेषताएँ निम्न हैं :

- इस शैली के चित्रों में पुरुषों का चेहरा गोल व अंडाकार दिखाया गया है। मुख पर बड़ी बड़ी मूँछे और विशाल नेत्र तथा अधर प्राय: खुले हुए चित्रित किये गये हैं। स्त्रियों की आँखे मछली की आकृति की तरह तथा नथ युक्त लम्बी नासिका का चित्रांकन है।
- रंगो का प्रयोग सतर्कता से इन चित्रों में हुआ है। इनमें मुख्य रंग लाल, पीला तथा जोगिया है परन्तु पृष्ठभूमि में विभिन्न रंगों का प्रयोग है।

- इस शैली के चित्रों में प्रकृति-चित्रण अलंकारिक रूप में हुआ है। पर्वत तथा चट्टानों के चित्रांकन में मुगल तथा फारसी शैली का प्रभाव है तो जल को अपभ्रंश शैली के समान टोकरी बुनने वाले अभिप्रायों से चित्रित किया गया है। पृथ्वी को अधिकतर लाल हरे एवं पीले रंग से चित्रित किया गया है। इन चित्रों में कुंजो, लताओं, वृक्षों और पुष्पों की अधिकता है, जिनके चित्रांकन में नैसर्गिकता लाने की चेष्टा के बावजूद कृत्रिमता दिखाई देती है।
- "गहरी नीली या धुएँ के रंग की पृष्ठभूमि में सफेद बिंदियों को लगाकर चित्रकार ने तारों से पूर्ण रात्रि का दृश्य चित्रित किया है। कहीं-कहीं रात्रि में तारों के साथ चन्द्रमा भी अंकित है। दिन का दृश्य अंकित करने के लिए केवल आकाश का रंग बदल दिया गया है।"[41]

बिहारी सतसई, सूरसागर, पंचतन्त्र के उपाख्यान, कविप्रिया, मधुमालती, नल दमयन्ती जैसी अनेक कथाओं को मेवाड़ शैली में चित्रित किया गया है जिनमें ग्राम्य जीवन, उत्सव, युद्ध, आखेट सम्बन्धी दृश्यों, स्त्रियों के जल विहार, नायिकाभेद, राग-रागिनी एवं कृष्ण लीलाओं का चित्रांकन इस शैली के प्रमुख विषय रहे हैं।

➢ **किशनगढ़ शैली** :

यह राजस्थान की एक उन्नत शैली है जो सन 1735 से 1770 तक के समय में अपने पूर्ण रूप में पहुंची थी। इस शैली को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने का श्रेय तीन व्यक्तियों को है- प्रथम कवि, चित्रकार, भक्त और कला प्रेमी राजा सावंत सिंह-जिनके आश्रय में यह कला उत्कर्ष पर पहुंची। मात्र तीन दशक की अल्पावधि में ही किशनगढ़ की कलात्मक गतिविधियाँ इस प्रकार से खिल उठी कि असाधारण सौन्दर्य वाली कृतियों का निर्माण होने लगा।

द्वितीय- महाराज सावंत सिंह की प्रेमिका 'बनी ठनी' को इसका श्रेय जाता है जिसका अद्वितीय रूप सौन्दर्य चित्रांकन में रूप-चित्रण का आदर्श बन गया तथा तृतीय सावंत सिंह के आश्रित चित्रकार मोरध्वज निहालचन्द्र को - जिन्होंने बनी ठनी और राजा सावंतसिंह को नायिका और नायक तथा राधा-कृष्ण के जीवंत रूप में चित्रित किया। किशनगढ़ शैली में ही प्रसिद्ध 'गीत गोविन्द' का भी चित्रण हुआ है। "साहित्यिक पृष्ठभूमि पर आधारित किशनगढ़ शैली के चित्र दर्शक को कविता और कला दोनों का रसास्वादन कराने में पूर्ण सक्षम हैं।" [42] भागवत पुराण तथा नागरीदास द्वारा रचित 'बिहारी चन्द्रिका' पर भी इस शैली में बहुत चित्र रचे गए हैं। व्यक्ति चित्रों में नवाबों, बादशाहों तथा संतो के चित्र प्रमुख रूप से अंकित हुए हैं।

इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- इस शैली की मुख्य विशेषता नारी चित्रण है। इसमें हुए नारी चित्रांकन की तुलना काँगड़ा शैली में चित्रित नारी से की जा सकती है। स्त्रियों के चेहरे कोमलता लिए, भारीपन व रुक्षता शून्य लताओं के समान पतला, लचकदार व छरहरा शरीर इस शैली में चित्रित है। चित्रों के अंकन में चेहरे लम्बे हैं जिनमें माथा ऊँचा है तथा नाक लम्बी व नुकीली है और ठोड़ी भी थोड़ी लम्बी चित्रित हुई है। खंजन पक्षी के आकार की तरह नेत्र जो पीछे तक खींचे हुए नेत्र हैं तथा भृकुटी धनुषाकार सुंदर है।
- मेवाड़ शैली की भांति रात्रि के दृश्य इस शैली में निपुणता से चित्रित हुए हैं। इन चित्रों में प्रतीकात्मता भी है।
- इन चित्रों में भावुकता तथा प्रकृति सजीव रूप में विद्यमान है। झील के दृश्यों में भी चित्रकारों ने प्राकृतिक सौन्दर्य को बड़ी सफलता से चित्रित किया गया है।
- पर्दे, फर्श के कालीन तथा कपड़ों पर सुंदर चित्रांकन इस शैली में हुआ हैं।

किशनगढ़ शैली के ये चित्र आकार में थोड़े बड़े है। रूपनगर व किशनगढ़ दो स्थानों पर यह शैली विकसित हुई है। इसमें राधा कृष्ण की प्रेम-लीला, प्रिय-प्रियतम का मधुर मिलन तथा भाव-चित्रण जहां चित्रकारों को अभीष्ट रहा है वहीं कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं से प्रेरित होकर गीत गोविन्द, भागवतपुराण, रुक्मणिहरण आदि के चित्रांकन में भी कलाकारों ने अपना जादू फेरा है।

➢ **बीकानेर शैली** :

राजस्थान के अन्य देशों की भांति बीकानेर में भी स्थानीय विशेषताओं से युक्त मौलिक चित्र शैली का विकास 16वीं सदी के अंत में हुआ। बीकानेर के राजा रायसिंह को कला संग्रह का बड़ा शौक था इसलिए वे मुगल दरबार से कुछ दक्ष कलाकारों को अपने साथ ले आये जिन्होंने इस शैली को शिखर तक पहुँचाया। इन कलाकारों में मुख्य रूप से 'उस्ता अली रजा' तथा 'उस्ता हामिद रूकनुद्दीन' थे। राजा राय सिंह के कला प्रेमी होने के बावजूद भी उस समय की एकमात्र सचित्र पांडुलिपि कालिदास कृत 'मेघदूत' ही प्राप्य है जो राजपूत चित्रकला के उद्गम को समझने के साथ बीकानेर शैली की आरम्भिक अवस्था को जानने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। आगे चलकर राजा रायसिंह के पौत्र करन सिंह के शासन में हामिद रूकनुद्दीन ने राजदरबार में रहकर आचार्य केशवदास की 'रसिकप्रिया' पर श्रेष्ठ चित्र इस शैली में अंकित किये। इसके पश्चात बीकानेर शैली में चित्र निर्माण लगातार होता रहा। करनसिंह के पुत्र अनूप सिंह के समय में रसिकप्रिया, बारहामासा, भागवत पुराण से सम्बन्धित चित्र बीकानेर शैली में बने हैं। रागमाला, शिकार के दृश्य राजपरिवार के लोगों के चित्र भी काफी तादाद में इस शैली में चित्रित हुए हैं जिनमें 'स्त्री बच्चे से खेलते हुए' नामक चित्र बीकानेर शैली की विशेषताओं को आत्मसात करने वाला उत्कृष्ट चित्र है। डॉ. रीता गुप्ता इस शैली के सम्बन्ध में लिखती हैं कि "बीकानेर चित्र परम्परा प्राय: 17 वीं शताब्दी में देखने को मिलती

है। यहाँ की अच्छी कलाकृतियाँ को 'हरमन गोएट्ज' ने प्रकाशित किया। बीकानेर शैली के चित्रों के प्रमुख विषय है, राजा-महाराजाओं, राजकुमारियों-राजकुमारों के व्यक्ति चित्र, दरबार एवं आखेट के दृश्य जो यथार्थ अंकन के आधार पर बनाये गए हैं। राग-रागनियों के चित्रांकन की प्रतिलिपियाँ, रसिकप्रिया, भागवत पुराण, नायिका-श्रृंगार, गीत गोविन्द एवं अन्य श्रृंगारिक आख्यानों को भी बीकानेर शैली के चित्रकारों ने अपनी कूची के माध्यम से रंगो में बांधा है।"[43] बीकानेर चित्रांकन शैली की शैलीगत विशेषताएँ निम्नवत हैं।

- इस शैली में कोमल रंग योजना होने के कारण चित्रों में सूफियानापन का एहसास होता है।
- इस शैली में चित्रांकित मानवाकृतियों के होंठ सिकुड़े हुए, नेत्र निमीलित, छोटी ठुड्डी, कलाईयाँ पतली हैं। पुरुषों की मूँछे कुछ नीचे की ओर झुकी हुई चित्रित हुई हैं।
- मुगल प्रभाव के कारण भवनों तथा गुम्बदो का विशेष चित्रांकन भी इस शैली में मिलता है।
- बीकानेर शैली में लघुचित्र तथा भित्ति चित्र दोनों ही निर्मित हुए हैं। इस शैली में बादलों का चित्रांकन छल्लेदार रूप में हुआ है साथ ही वर्षा ऋतु के चित्रों में बिजली व सारस युगल का भी सुन्दरता से चित्रांकन इन चित्रों में परिलक्षित होता है।

इस प्रकार बीकानेर शैली की लघु चित्रकला में जहां एक और मुगल चित्रकला से सामंजस्य है वही पश्चिमी भारतीय चित्रकला तथा राजपूत चित्रकला की विशेषताएँ भी अंतर्निहित हैं। अपनी उदात्त कल्पना, लयबद्ध रेखांकन, सुकुमार रंग योजना एवं विशिष्टता के लिए बीकानेर शैली प्रसिद्ध है।

➢ **बूंदी शैली :**

यह शैली सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ में कोटा, बूंदी और झालवाड़ में पनपी। पहले यह मेवाड़ शैली के अंतर्गत ही एक स्वतंत्र शाखा के रूप में थी जो कि कुछ समय के पश्चात अपने से मुगल प्रभाव को समाप्त कर मेवाड़ में पृथक नयी शैली के रूप में उभरकर आई। इस शैली की विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

- विशेष रूप से नायक नायिका, बारहमासा, ऋतु चित्रण, भागवतपुराण पर आधारित कृष्ण लीला एवं रीतिकालिन कवियों की रचनाओं से सम्बन्धित कई चित्र इस शैली के चित्रों के विषय रहे हैं।
- इस शैली की मानवाकृतियों में मेवाड़ से कुछ साम्य होते हुए भी इसकी भाव भंगिमाओं में भिन्नता है। स्त्रियों की आकृतियों का चित्रांकन साधारण रूप से लम्बी और स्फूर्ति से भरी हुई इकहरी बदल वाली के रूप में है। गोल चेहरों पर बहुत महीन काली रेखा से चेहरों का रेखांकन, भावपूर्ण नेत्र, नुकीली नासिका, दोहरी एवं कुछ आगे निकली हुई ठुड्डी, पीछे की और जाता हुआ ललाट, लम्बी बाहें और मेहँदी की लालिमा से युक्त अंगुलियाँ इस शैली में विशिष्ट रूप से चित्रांकित हैं। पुरूष आकृतियों का चित्रांकन लम्बा कद, भरा हुआ मुख, बड़ी मूँछे व गोलाकार ललाट के साथ पुरुषत्व को प्रदर्शित करते हुए हुआ है।
- सघन प्राकृतिक सुषमा बूंदी शैली की विशेषता है। इसके साथ ही पशु-पक्षियों का चित्रण यथार्थपूर्ण, सशक्त एवं सजीव छाया प्रकाश का संयोजन, इसके चित्रों को सुंदर और भावपूर्ण बनाता है।

- नारंगी तथा हरे रंग की बूंदी के चित्रों में प्रधानता है। इसके अलावा पीला, लाल, हरा, काला, नीला, गेरूए रंगों का भी प्रयोग यथावत हुआ है। चित्रों में वेशभूषा, शैय्या, प्रकृति एवं पात्रों में अलंकरण को दर्शाने हेतु सोने तथा चांदी के रंगो का भी प्रयोग किया जाता था।

बूंदी शैली के इन चित्रों में रेखाएँ कोमल, गतिपूर्ण एवं भावप्रधान है। इस शैली के चित्र एक और अपनी निजी विशिष्टताओं के कारण प्रसिद्ध हैं तो दूसरी और राजस्थानी शैलियों में अपनी मौलिकता के कारण।

➢ **कोटा शैली** :

कोटा और बूंदी शैली प्रारम्भ में एक ही मानी जाती थी परन्तु 17वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में कोटा शैली का अपना निजत्व उभरता दिखाई पड़ता है। कोटा राज्य की नीव महाराज माधोसिंह ने 1631ई. में रखी। यद्यपि कोटा, बूंदी राज्य का हिस्सा था तथापि दोनों के चित्रों में शैलीगत पर्याप्त अंतर है। इस समय के प्रमुख चित्रकारों में लच्छीराम, रघुनाथ, गोविन्दराम तथा नूरमुहम्मद आदि हैं, जिन्होंने राजकीय संरक्षण में रहकर अपनी कलात्मक प्रतिभा के अद्वितीय नमूने प्रस्तुत किये। प्रारम्भ में दरबारी दृश्य और जुलूस, श्रीकृष्ण की जीवन लीला से सम्बन्धित चित्र, राजाओं के शबीह आदि कोटा शैली के चित्रकारों के प्रिय विषय रहे परन्तु बाद में बारहमासा, राग-रागनियों, नायिका-भेद, युद्ध-दृश्य, शिकार-दृश्य, पेड़-पौंधो, चट्टानों, वन्य पशु-पक्षी आदि प्रकृति से सम्बन्धी चित्रों का भी पर्याप्त अंकन इनमें देखने को मिलता है। कोटा शैली के चित्रों के विशेषताएँ-

- इस शैली के चित्रकारों द्वारा चित्रित नारी का अंकन पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद उसकी पूर्णरूपेण भावाभिव्यक्ति नहीं हो पायी है, आकृतियाँ मात्र मूर्तिवत मुद्राओं में दृष्टिगोचर होती हैं।
- नेत्रों को कुछ चित्रों में खंजन पक्षी की तरह बड़ा तथा सुंदर बनाया गया है तो कहीं-कहीं बादाम के आकार का चित्रित किया गया है।

कोटा शैली में लघुचित्र तथा भित्तिचित्र दोनों पर्याप्त मात्रा में बने हैं। जिनमें सुनहरे रंग का खूब प्रयोग है तथा इनमें रेखा सौन्दर्य इतना नहीं दिखता जितना कि अन्य राजस्थानी शैलियों में।

➢ **जयपुर शैली** :

जयपुर शैली मुगल प्रभाव के साथ 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आई। इस शैली का उद्भव एवं विकास 1700 से 1900ई. तक माना जाता है। संवाई राजा जयसिंह कला के बड़े प्रेमी थे। इन्होने ही जयपुर नगर का निर्माण तथा वहाँ की दीवारों पर चित्र अंकित करवाये। इन चित्रों में अधिकतर मुगल शैली के चित्रों की ही नक़ल थी परन्तु कुछ स्वतंत्र चित्र भी इस समय के मिलते हैं। सचित्र ग्रंथ में 'बिहारी सतसई' यहाँ का मुख्य व प्रचलित चित्रांकित ग्रंथ है। जयपुर शैली के आरम्भ में कुछ भित्ति चित्र भी बने परन्तु बाद में श्रृंगारिक चित्र ही इस शैली में निर्मित हुए। महाराजा प्रताप सिंह के समय में यह शैली अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची। इनके कला प्रेमी और कृष्ण भक्त होने के कारण इससे संबंधित चित्रों की रचना इनके समय में हुई। इनमें राग-रागनियों तथा ऋतुओं का चित्रण भी विशेष है। इसी युग में अधिकतम लघुचित्रों का निर्माण हुआ जिनमें रंगों तथा रेखाओं का सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। इसकी शैलीगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- रामायण, महाभारत, गीत गोविन्द तथा वात्स्यायन के कामसूत्र पर आधारित चित्रों की इस समय में रचना हुई।
- कृष्ण लीलाओं के चित्रों में भक्ति तथा श्रृंगार का अनूठा समन्यव इस शैली के चित्रों में देखने को मिलता है।
- राग-रागनियों का जयपुर शैली में विशेष सौन्दर्य के साथ चित्रण हुआ है। यहां के चित्रों में 36 रागनियों का श्रृंखलापूर्ण चित्रण हुआ है जिनमें नायक-नायिका के विभिन्न रूप चित्रांकित हैं।
- इस शैली के मानवाकृतियों के चित्रण में पुरूष तथा स्त्रियों के मुख गोल बनाये गए हैं तथा इन चित्रों का आकार भी मध्यम है। स्त्रियों के चित्रण में मत्स्याकार आँखे, कुछ मोटे होंठ, क्षीण कटि तथा फैले हुए वक्ष का चित्रांकन है। पुरूषाकृतियों को प्राय: "पगड़ी बांधे, घेरदार जामा पहने तथा दुपट्टे से कमर कसे हुए बनाया गया है। साधारणत: भरा हुआ शरीर, मंझले आकार की गोल नाक, कान तक बड़े बाल तथा पीलापन लिए चेहरे बनाये गये है।"[44]
- इन चित्रों में लाल, नीले व सुनहरी रंगो का बाहुल्य है। इसके साथ ही बेल-बूटेदार हाशिये का भी प्रयोग हुआ है जो मुगल शैली की देन है।

जयपुर शैली का प्रभाव नवलगढ़, सीकर, झुंझुन, लक्ष्मणगढ़, और पिलानी पर भी पड़ा जिसके कारण यहाँ के चित्रों पर जयपुर शैली की छाप दृष्टिगोचर होती है। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में, मोहम्मद शाह, साहिबराम, रामजीदास, हीरानंद, त्रिलोक और गोविन्द रहे जिन्होंने पशु-पक्षी, शिकार आदि सुंदर चित्रों की रचना के साथ व्यक्ति चित्रों का भी निर्माण किया।

➢ **मुगल शैली :**

मुगलों के भारत में आने पर वह अपने साथ एक विशिष्ट शैली भी ले कर आये जिसे 'ईरानी शैली' कहा जाता है। मुगलों के भारत आने के पश्चात भारतीय चित्रों को उन्होंने देखा तो भारतीय कलाकारों का बहुत सम्मान किया तथा इससे प्रभावित हुए बिना वह नहीं रह सके जिसके कारण कुछ ईरानी और कुछ भारतीय कला गुणों के सामंजस्य से एक सर्वथा नवीन शैली का निर्माण हुआ जिसको 'मुगल शैली' नाम दिया गया।

राज्याश्रित चित्रकार दरबार में ही रहते थे जिसके कारण प्रारम्भ में मुगल शैली के चित्र केवल राजदरबार तथा व्यक्ति चित्रों आदि तक ही सीमित थे। भगवतशरण उपध्याय के शब्दों में, "मुगल शैली के चित्रों में विशेषत: तीन तरह के चित्र पाए जाते है-- व्यक्ति चित्रण, पुस्तक चित्रण और विविध स्थितियों के प्रकृति अथवा सौन्दर्य या घटना चित्रण।" [45] धीरे धीरे इन चित्रों का विषय क्षेत्र विस्तृत हुआ। भारतीय चित्रों में चित्रित धर्म ग्रंथों का भी प्रभाव इन पर पड़ा जिससे मुग़ल चित्रकारों ने भारतीय ग्रंथ रामायण, महाभारत, नलदमयन्ती, पंचतन्त्र आदि का भी सचित्र अनुवाद किया। मुगल शैली के इन चित्रों की विशेषताएँ निम्नवत हैं -

- इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता व पहचान इसमें बने एक चश्म चेहरे हैं। जो कि इस शैली को राजस्थानी शैली की देन है। जितने भी व्यक्ति चित्र इस शैली में बने उन सभी के चेहरे एक समान मिलते हैं। कुछ चेहरे तो इनमें केवल रेखाओं से ही बने हुए हैं परन्तु देखने में यह भी पूर्ण कलात्मक व सजीव हैं।
- प्रत्येक चित्र में बेल-बूटे से सजे हाशिये इन चित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें कहीं-कहीं मुख्य चित्र उस सजावट से फीके पड़ जाते हैं।

- मुगल शैली की एक विशेषता चित्रों में पशु और पक्षियों का चित्रण भी है। साथ ही, हाथियों के लड़ाई के दृश्य, शिकार आदि के दृश्य भी सुचारू रूप से इस शैली में चित्रित मिलते हैं। साथ ही इस शैली में प्रकृति का भव्य चित्रण हुआ है। पेड़, नदी, पहाड़ आदि का बहुत ही बारीकी से चित्रांकन इस प्रकार हुआ है कि तीन प्रकार के पेड़ों के चित्रण में भी भिन्नता अलग से दिखाई दे जाती है। जंगल के दृश्यों का चित्रांकन भी स्वाभाविक एवं सौन्दर्यपूर्ण है।

- मुगल शैली के चित्रांकन में महीन रेखाओं पर इतना अधिक ध्यान चित्रों की सजीवता में बेजोड़ है। व्यक्ति चित्रों में इन रेखाओं के सुंदर और सूक्ष्मांकन के सम्बन्ध में डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा का कथन है कि "चेहरे की दाढ़ी का एक-एक बाल बढ़ाने का प्रयत्न इन चित्रों में मिलता है। चेहरे पर जो हल्का रेशा होता है, गालों पर उसको भी इतनी ही मेहनत से इन मुगल शैली के चित्रकारों ने बनाया कि आश्चर्य होता है। उस समय अणुवीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) तो होता नहीं था फिर इतनी महीनता का जो कार्य हुआ है वह वास्तव में प्रशंसनीय है।"[46]

- मुगल शैली के चित्रों में साफो में रत्न जड़ित स्वर्ण कलगी पर सोने के रंगो का अतिसुन्दर प्रयोग हुआ है। गले की मालाओं, पैरो की जूतियों तथा वस्त्राभूषण में भी सोने के रंगो का प्रयोग चारुता से हुआ है।

मुगल शैली की इतनी विशिष्टताओं के बावजूद भी दरबारी वातावरण से बाहर निकलकर जनसाधारण के जीवन की झांकी के दर्शन करा पाने की असफलता के कारण यह कला मुगल दरबार में उत्पन्न होकर वहीं समाप्त हो गयी।

➢ **गुलेर शैली** :

गुलेर शैली लगभग 1755 ई. तक कुछ अपने निश्चित निखरे रूप में आ गयी थी तथा इसके बीस-तीस साल तक यह शिखर पर रही। पहाड़ी कला में काँगड़ा शैली को रंग-रूप देने व ऊँचाई तक पहुँचने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी गुलेर शैली द्वारा ही हुआ।

गुलेर का महत्त्व इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण भी है। काँगड़ा के दक्षिण के मैदानों से अधिक निकट होने के कारण एक तरफ इस पर पंजाब का अधिक प्रभाव पड़ा तो दूसरी और मुगल संरक्षण मिलने के कारण इसकी प्रतिष्ठा भी बनी रही। जिन कलाकारों के काँगड़ा पहुँचने से वहां चित्रकला पनपी वे गुलेर से ही सम्बन्धित थे। इस कला का पतन भी मुगल राज्य के साथ ही होने लगा था।

- गुलेर शैली के चित्रों का विषय रामायण तथा महाभारत की प्रमुख घटनायें रही हैं जिनमें राम व रावण की सेना का चित्र तथा रावन का सीता हरण चित्र मुख्य है।
- इस शैली में राजपरिवार व दरबारों के चित्रों का अंकन भी हुआ है जिनमें राजा गोवर्धन सिंह का घोड़े पर सवार चित्र तथा दरबार के कुछ चित्र प्राप्त भी हुए हैं।
- स्त्रियों का सुंदर चित्रण भी इस शैली में हुआ है, जिनके अंग-अंग के सौन्दर्य के अंकन में लय तथा रूमानी आकर्षण है। ये चित्र कुछ हद तक काँगड़ा के चित्रों से मिलते-जुलते होकर भी अपनी मौलिकता लिए हुए हैं।

व्यक्ति चित्रों में सजीवता, वर्णित विषयों का सूक्ष्म चित्रांकन मुद्राओं के सुंदर व स्पष्ट अंकन के साथ प्रेम और अनुराग की सजीव अभिव्यक्ति गुलेर शैली के चित्रों की विशेषताएँ है जिनसे इस शैली में प्राकृतिक सौन्दर्य पैदा हो गया है।

➢ **काँगड़ा शैली** :

काँगड़ा शैली का जन्म 18वीं शताब्दी के अंत में हुआ इस संसार प्रसिद्ध शैली में मुगल तथा राजस्थानी दोनों कलाओं का सम्मिश्रण दिखाई देता है अर्थात् "काँगड़ा की लोक कला में मुगल कला की भव्यता से काँगड़ा शैली का जन्म हुआ।"[47]

इस शैली के चित्रों के वातावरण में बादल, पेड़, फूल आदि की पृष्ठिभूमि पर प्रणयाभिभूत नारी की प्रेम विह्वलता को चित्रित किया गया है। इस शैली के मुख्य केंद्र तीरा सुजानपुर और नूरपुर हैं। काँगड़ा कला को प्रश्रय देने वालों में हमीरचन्द, अभयचन्द, घमण्डचन्द, तथा संसारचन्द का नाम उल्लेखनीय है जिनमें संसारचन्द का समय चित्रांकन की दृष्टि से काँगड़ा शैली में स्वर्ण युग रहा। चित्रकारों ने पूर्ण एकाग्रचित होकर सीमित विषयों की सुन्दरतम चित्र शैली में तन्मयता से इन चित्रों का निर्माण किया है। पहाड़ी प्रदेश में कृष्ण भक्ति सर्वोपरि होने के कारण अधिकतम चित्र इस शैली के भी कृष्ण लीलाओं पर ही आधारित हैं। 'भागवतपुराण', 'गीतगोविन्द', 'बिहारी सतसई', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' इस शैली में विशेषत: चित्रांकित हुई हैं। काँगड़ा शैली में ही बिहारी सतसई के 40 चित्र मिलते हैं।

काँगड़ा शैली के चित्रों का मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण इस शैली में हुआ है। डॉ. रीता गुप्ता के शब्दों में, "काँगड़ा शैली में प्रेम के विभिन्न भावों का छन्दमय, काव्यमय और चित्रात्मक रूप अंकित है।"[48] वियोग की तीनों स्थितियों पूर्वराग, मान, प्रवास तथा संयोग के हाव-भाव को काँगड़ा के चित्रकारों ने सजीवता से चित्रांकित किया है। नायिका-भेद का विशद व सौन्दर्यपूर्ण चित्रण, जनसामान्य का सुचारू चित्रांकन, उत्सवों के चित्र, बारहमासा में ऋतुओं का अपूर्व चित्रांकन, व्यक्ति चित्रों का

निर्माण आदि काँगड़ा शैली के विविध विषयात्मक सजीव चित्रांकन काँगड़ा शैली की उत्कृष्टता का परिचयात्मक है।

काँगड़ा का प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रकारों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा है परन्तु राजा संसार चन्द की मुत्यु के बाद जैसे काँगड़ा की चित्रकला का सूर्य अस्त होने लगा।

काँगड़ा शैली के चित्रकारों में मनकु, खुशाला, किशनलाल, वसिया, पुरखू, फत्तू आदि चित्रकार आते हैं जिनकी विशेषता थी कि ये चित्र पर अपना नाम नहीं लिखते थे। काँगड़ा शैली के चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ :

- काँगड़ा शैली के चित्रों में दृश्यों की प्रधानता तथा रोमांच है।
- इस शैली में चित्रण कम होने पर भी भावों का बड़ा सजीव हाव-भावपूर्ण चित्रांकन हुआ है।
- इस शैली के चित्रों में स्त्रियों का चित्रण बहुत प्रभावशाली है। इनका चित्रांकन छरहरे शरीर, धनुषाकार आँखे, कोमल तथा लयदार बनी हुई उँगलियाँ आदि भारतीय परम्परा के अनुसार हुआ है, "गोल मुखाकृति, बड़ी-बड़ी भावप्रवण आँखे, पीनवक्ष तथा सुंदर उँगलियाँ इन चित्रों में स्त्री सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं।"[49]
- प्रकृति का मनोहारी चित्रण भी काँगड़ा शैली की एक अन्यतम विशेषता है। वृक्ष, बादल, जल, जंगल, पहाड़ सभी के दृश्य इस शैली में बड़े आकर्षक व सजीव हैं, "कल-कल करते झरने व जल का चित्रण बड़ी सफलता से किया गया है। काली रात या चांदनी रात के चित्रण में पूर्ण रूप से कलाकार को सफलता मिली है। चारों ऋतुओं का बड़ी सजीवता से चित्रण हुआ है।.... वर्षा ऋतु में आकाश में बिजली, वर्षा आदि

का सुंदर चित्रण हुआ है। फागुन में होली खेलते हुए नर-नारी उस ऋतु के सुखद वातावरण को दर्शाते हैं।"[50]

- इस शैली के कलाकारों द्वारा सीधे तौर पर लाल, पीला और नीला रंग प्रयोग में अधिक लाया गया है जबकि मिश्रित रंगो में गुलाबी, हरा, बैंगनी आदि परिप्रेक्ष्यानुसार उपयोग में लाया गया है, "रंगो के संयोजन में काँगड़ा के कलाकारों ने कमाल कर दिखाया है जो भी वातावरण दिखाया है उसमें उसी से सम्बन्धित रंगो का प्रयोग हुआ है।"[51]

- अजन्ता के समान ही रेखाओं से भावाभिव्यक्ति काँगड़ा के चित्रों की विशिष्टता है। गिलहरी के बालों से निर्मित तूलिका के प्रयोग से उभारी गई महीन रेखाएँ आकृतियों में लय तथा छंद पैदा करती है। अंग-प्रत्यंग की सुन्दरतम रचना रेखाओं द्वारा ही इस शैली में सजीव बन पड़ी है।

- प्रकृति का चित्रण प्रतीकात्मक रूप से इस शैली में हुआ है। जिसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी किसी न किसी श्रृंगारिक भाव के रूप में अंकित हुए हैं।

डॉ. एम. एस. रंधावा के शब्दों में, "काँगड़ा की चित्रकला रंगमंच संगीत के अलावा कुछ नहीं है।"[52] अत: जो कमी चित्रांकन की राजस्थानी तथा मुगल शैली के चित्रों में बाकी रह गयी थी उसे काँगड़ा शैली के चित्रों में पूर्णता प्राप्त हुई।

➢ **बसोहली शैली** :

बसोहली शैली के चित्रों का सर्वप्रथम उल्लेख आर्क्योलौजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया की वार्षिक रिपोर्ट में सन् 1918-19 में मिलता है। काँगड़ा शैली के उत्थान में जो स्थान राजा संसारचन्द का है वही स्थान बसोहली शैली के उत्थान में राजा कृपाल पात्र का है। बसोहली

शैली के चित्र अधिकतर लोक कला पर आधारित सादे हैं। वैष्णव धर्म के प्रचार का प्रभाव बसोहली शैली पर पड़ने के कारण विष्णु और उनके दशावतारों का चित्रण तथा रामायण, भागवत और महाभारत का चित्रांकन इस शैली में हुआ। राजा कृपाल ने भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' के नायक-नायिका भेद तथा श्रृंगारिक चित्रणों पर आधारित चित्र विशेष रूप से अंकित कराये। रागमाला तथा प्रकृति का चित्रण भी इस शैली में सुंदर हुआ है। बसोहली शैली के चित्रांकन की कुछ विशेषताएँ निम्न हैं :

- बसोहली शैली की मुख्य विशेषता पद्माकर, कानों तक स्पर्श करते तथा रस भाव पूरित नेत्रों का चित्रांकन है।
- इस शैली में चटख रंगो से मानवाकृतियों का चेहरा बनाने की एक नई प्रणाली मिलती है। चेहरे की बनावट में ढालदार माथा, ऊँची नाक, कमल के समान विशाल नेत्र हैं। शरीर बादाम के रंग के समान इस शैली में चित्रांकित हुआ है। डोगरा लोक गीतों की प्रसिद्ध नायिका गंगी से बसोहली चित्रकारों ने प्रेरणा लेकर उसी के प्रभाव में सुंदर आभूषणों से युक्त, झीने वस्त्रों से सुसज्जित तथा बड़े-बड़े कामासक्त नेत्रों वाली नारी के आकर्षक चित्र बनाये हैं। इन "बसोहली के चित्रों में प्रेम तथा रोमांच कूट-कूट कर भरा है।"[53]
- हाथों की विविध मुद्राओं द्वारा भावों का प्रदर्शन भी बसोहली शैली के चित्रों की एक विशेषता है।

बसोहली शैली के इन चित्रों में लय तथा गति होने के कारण इनमें सजीवता है। यह चित्र अभिजात्य से दूर लोक कला से परिपूर्ण है। जिसके चित्रकारों में मनकु, देवीदास, सजनू, डोंडी तथा नैनसुख के नाम प्रमुख हैं।

➢ **चम्बा शैली** :

चम्बा शैली का उदय 18 वीं शताबदी के मध्य में राजा उदयसिंह के राज्यकाल में हुआ माना जाता है। बसोहली शैली का प्रभाव आस-पास के क्षेत्र में लगातार फ़ैल रहा था जिनमें चम्बा भी एक था। बसोहली और गुलेर की शासन व्यवस्था डावांडोल होने पर वहाँ के कलाकार चम्बा की तरफ आ गये जिससे चम्बा शैली ने धीरे-धीरे चित्रों में अपना निजत्व बना लिया। राजा जयसिंह, दलेल सिंह, उमेद सिंह, राज सिंह व जीत सिंह ने चम्बा में चित्रकला को काफी बढ़ावा देकर उसका विकास किया। इस समय तक चम्बा की यह कला राजदरबार से जनसामान्य तक पहुँच गयी थी जिससे इसने धीरे-धीरे लोक कला का रूप ग्रहण कर लिया।

चम्बा शैली में दो तरह के चित्रण मिलते हैं व्यक्ति चित्र व पौराणिक चित्र। व्यक्ति चित्रों में राजाओं के चित्र है जिनमें अधिकतर को हुक्का पीते दिखाया गया है। पौराणिक चित्र भी इस शैली में तीन विषयों को लेकर अधिक चित्रांकित किये गए हैं - उषा-अनिरुद्ध, कृष्ण-रुक्मणि तथा कृष्ण और सुदामा की कथाएँ। वाल्मीकि रामायण के छ: काण्ड व दुर्गा सप्तशती के साथ ही छ: ऋतुओं के छ: चित्रों का अंकन भी इस शैली चित्रों के में मिलता है।

चम्बा शैली के चित्रों की विशेषताएँ हैं :

- इस शैली में स्त्रियों का चित्रण कोमलांगी है। लम्बी नाक, छरहरी काया व माथा तथा नाक एक ही रेखा में प्राय: स्त्रियों के चित्रांकन में दृष्टिगोचर होती है।

- दैनिक जीवन के सुदूर चित्रों में दर्पण के सामने श्रृंगार तथा केश सज्जा करती हुई महिला, चूल्हे पर भोजन पकाती महिला व झूला झूलती महिलाओं आदि का बहुत ही मनोहारी चित्रांकन हुआ है।
- रंग प्रयोग इस शैली में चम्बा पहाड़ी की अन्य शैलियों से अलग तथा अधिक सुंदर ढंग से हुआ है जिसमें कहीं-कहीं पार्श्व भूमि बिलकुल लाल रंग से बनी हुई चित्रित है। सोने चांदी के रंगो का प्रयोग भी इस शैली में बहुतायत से हुआ है।
- चम्बा शैली में बारहामासा के चित्र कृष्ण-राधा की प्रणय लीलाओं के कारण बहुत आकर्षक बन पड़े हैं।

➢ **कुल्लू शैली** :

कुल्लू की चित्रांकन शैली पर सर्वप्रथम प्रकाश सर.जे. सी. फ्रेंच ने डाला। उन्होंने 'हिमालयन आर्ट' नामक ग्रंथ में कुल्लू का नाम लिखा। बसोहली शैली का कुल्लू पर प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु बाद में यह एक स्वतंत्र शैली के रूप में हमारे समक्ष आती है। एक महत्त्वपूर्ण भित्ति चित्र की प्रतिलिपि के निर्माण के उद्देश्य से ललित कला अकादमी द्वारा प्रसिद्ध चित्रकार जगदीश मित्तल को कुल्लू की राजधानी सुल्तानपुर भेजा गया जहां पर चित्र निर्माण के समय उन्हें एक कमरे में रामायण पर बना एक भित्ति चित्र मिला। जिस महल से यह भित्ति चित्र प्राप्त हुआ उसे राजा प्रीतम सिंह ने बनवाया था। इस चित्र के पास ही प्रीतम सिंह के पुत्र राजा विक्रम सिंह का भी व्यक्ति चित्र बना हुआ मिला तथा उसके साथ ही 'मालती माधो' नामक विचित्र ग्रंथ भी मिला जिस पर 'भगवान' नामक चित्रकार द्वारा 1799 ई. में राजा प्रीतम सिंह के राज्य में उसे बनवाने का उल्लेख है। यहीं से सन 1794 ई. का चित्रित

'भागवतपुराण' भी प्राप्त हुआ। इसके अलावा कुछ चित्र कुल्लू के अन्य राजाओं तथा रागमाला आदि के भी मिले जिससे इन बातों पर स्पष्टत: प्रकाश पड़ता है कि कुल्लू शैली में धार्मिक ग्रंथो रामायण, महाभारत, भागवतपुराण के साथ व्यक्ति, राजाओं तथा रागमाला आदि के चित्रों का भी निर्माण हुआ है। कुल्लू शैली के चित्रों की विशेषताएँ हैं :

- इस शैली के चित्र भित्ति चित्र व लोक चित्र दोनों ही हैं।
- इन चित्रों में स्त्रियों के सिर बसोहली शैली के समान ढालदार अंडे के समान है। उनके हाथ लम्बे तथा पतली कलाइयों के साथ नाक कुछ ऊपर उठी हुई चित्रित हुई है। इन चित्रों में स्त्रियों की चोली कमर तक लम्बी है जो झालर से सजी हुई है।
- विलो के पेड़ का लगभग सभी चित्रों में प्रयोग यहाँ चित्रांकन की एक औपचारिक सज्जा प्रतीत होती है।

➢ **गढ़वाल शैली** :

गढ़वाल शैली का पूर्ण विकास 17वीं और 18वीं शती के मध्य में माना जाता है। इस शैली का प्रमुख चित्रकार भोलाराम था जिसके चित्रांकन के प्रभाव से गढ़वाल शैली की चित्रकला विकसित हुई। आरम्भ में यह शैली अवश्य निम्न स्तर की थी परन्तु बाद में काँगड़ा शैली के प्रभाव से यह निखर उठी। श्री वाचस्पति गैरोला के मत से "गढ़वाल शैली काँगड़ा की एक शाखा के रूप में 18वीं शताब्दी के अंत तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही जन्मी।"[54] चित्रकार भोलाराम का 1900 ई. लगभग में एक संग्रह भी मिलता है जिसके सभी चित्र एक ही शैली के हैं।

गढ़वाल शैली पर गुलेर शैली का भी प्रभाव माना जाता है। इस शैली में नायिका भेद, शिव-पार्वती, गोवर्धन पर्वत धारण व कालिया दमन आदि, राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं पर आधारित चित्र व पशु-पक्षियों तथा प्रकृति के मनोहारी चित्रांकन के साथ व्यक्ति चित्र भी उत्कृष्ट रूप में चित्रांकित हुए हैं। इसके लिए काल की विपरीत दिशा ही कही जायेगी कि यह शैली संरक्षण के भाव में 19वीं शताब्दी के अंत तक लुप्तप्राय हो चली।

- "अजन्ता की लोच गढ़वाली शैली में भी है। गढ़वाली चित्रों में प्रकृति-चित्रण फूलों से लदी लताएँ, टेढ़े-मेढ़े पेड़ों से लिपटी हुई, प्रेम संगति की प्रतीती कराती हुई, मनोरम दृश्य उपस्थित करती है।"[55]
- इस शैली के चित्रों में दृश्य चित्रण बहुत सुंदर हुआ है जिनमें फूलों से लदे पेड़ों का दृश्य चित्रांकन को सुन्दरता प्रदान करता है। विशेष प्रकार का ऊँचा क्षितिज व बादलों का कलात्मक चित्रण सजीवता से इन चित्रों में अंकित हुआ है।
- गढ़वाली चित्रों की शैली में स्त्रियों का चित्रण छरहरे बदल वाली सुडौल तथा आकर्षक युवती के रूप में हुआ है जिसे बहुत कलात्मकता के साथ सुंदर आभूषणों तथा झीने वस्त्रों से चित्रित किया गया है।
- गढ़वाल शैली के चित्रांकन में एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उच्च कुल की महिलाओं के चित्रण में माथे पर वक्राकर चन्दन का ऊपर की ओर लगा हुआ टीका है जिसकी वजह से यह शैली अलग से पहचानी जा सकती है।

➢ **तन्जौर शैली** :

चोल राजाओं द्वारा संरक्षित तंजौर प्राचीन काल से विभिन्न कलाओं का समृद्ध केंद्र रहा है। तन्जौर ललित कलाओं तथा राजाओं के विकास की सामग्री के लिए प्रसिद्ध है। 18वीं शताब्दी के अन्त में राजपूत राजाओं की अवस्था खराब होने पर आश्रय की खोज में भटकते आये चित्रकारों को राजा सरभोजी ने आश्रय प्रदान किया। इस समय रामायण एवं कृष्ण-लीला पर आधारित जो चित्राकृतियाँ बनायी गयी उसके लिए सर्वप्रथम एक दफ्ती पर इमली के गोंद के लेप से लीपा जाता था फिर उसके ऊपर एक या दो महीन कपड़े की तह चिपकाकर उस कपड़े पर चूने का लेप चढ़ाया जाता था। इसके पश्चात एक पत्थर से घिसाई कर इसे चिकना बनाकर ब्रुश से इस पर रेखाओं द्वारा चित्र अंकित किये जाते थे। जहाँ पर इन चित्रों में सोना व रत्न लगे होते थे वहीं इस पर एक सुखन नामक लेप चढ़ा दिया जाता था जिससे रत्न पक्की तरह चिपक जाए। इस प्रकार तन्जौर शैली के इन चित्रों को तैयार किया जाता था जो आधुनिक चित्रांकन शैली का विशिष्ट रूप है। सन 1855 में शिवाजी की मुत्यु के पश्चात ही राजवंश का अंत होने से चित्रकारों को राजसी संरक्षण न प्राप्त हो पाने के कारण यह कला विघटित होती गयी।

➢ **पटना या कम्पनी शैली** :

पटना शैली का जन्म 16 वीं शताब्दी में वहाँ के राजाओं व रईसों द्वारा आश्रित चित्रकारों से चित्र बनवाने के कारण हुआ। मुगल साम्राज्य की समाप्ति से चित्रकारों का भारत के विभिन्न स्थानों में जाकर बसना सर्वविदित है। उन्हीं चित्रकारों में कुछ सन् 1750-60 के समय में पटना आकर भी बसे। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में सेवकराम, हलासलाल, झुमकलाल, फ़कीरचन्द लाल तथा जयराम दास आदि आते है। पटना में लगभग दो

शताब्दियों तक जो चित्र बने वह पटना के बड़े व्यापारी केंद्र होने के कारण विलायत भेजे जाते रहे। पटना शैली आगे अंग्रेजो की प्रेरणा पर चलने लगी क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभावशील हो जाने के कारण अंग्रेजो ने जल रंगो की नवीन विधि चित्रकारों को सिखाकर उनसे उसी शैली के चित्र बनवाये। मुगल चित्रकारों द्वारा पटना शैली के निर्माण में अंग्रेजी विधियों के प्रयोग से पटना शैली में बने चित्रों में मुगल तथा पाश्चत्य शैली भी मिश्रित हो गयी। यही कारण है कि रायकृष्ण दास जी 'पटना शैली' नाम को अनुपयुक्त बताते हुए कहते हैं कि "यह कला तो पूरे देश बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, नेपाल यहाँ तक कि पश्चिम में भी व्याप्त थी परन्तु विलायती विद्वानों ने इसे 'पटना शैली' नाम इसलिए दिया क्योंकि इसके कुछ प्रमुख चित्रकार पटना के थे। यह एक ऐसी लहर थी जो यूरोपीय और मुगल शैली के सम्मिश्रण से समस्त भारत में फैली और ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ-साथ विस्तार पाती रही इसलिए इसको 'पटना शैली' के स्थान पर 'कम्पनी शैली' कहा जाना चाहिए।"[56]

इस शैली के प्रमुख केंद्र पटना, लाहौर, दिल्ली, लखनऊ, वाराणसी, मुर्शिदाबाद, नेपाल, पूना तथा तंजौर आदि थे। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में लालचंद और गोपालचंद वाराणसी हैं जिन्होंने सामाजिक जीवन तथा पशु-पक्षियों आदि से सम्बन्धित कई चित्रों की रचना की। इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- जीवन के आम पहलू का चित्रण इस शैली की विशेषता है जिसमें मछली बेचने वाला, धोबी, लुहार, दर्जी, बुनकर, फेरीवाला, पंडित, माली आदि सभी का बहुत सुंदर चित्रांकन हुआ हैं।
- इस शैली के चित्रों में व्यक्ति-चित्रों की मात्रा भी अधिक है जो बड़े आकर्षक बन पड़े है।

- इस शैली को क्योंकि अंग्रेजो ने प्रचलित किया था इसलिए यहाँ की कमी और गरीबी की बातों के प्रचार के उद्देश्य से अंग्रेजो ने यहाँ की महानता, कला-कुशलता व सौन्दर्य बोध को दबाकर, अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति तथा कला को सर्वोच्च दिखाने के लिए छोटे-छोटे समाज के दैनिक जीवन के चित्र अंकित करवाये।
- इस शैली के चित्रों को अबरख के पन्नों पर बनाया जाता था जिसमें नवीनता के दर्शन होते हैं। हाथी दांत पर इन चित्रों का अंकन किया जाता था। जो आज भी मिलते हैं। ये चित्र आकार में कुछ छोटे हैं। इस शैली के कुछ चित्र अभी भी विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।
- उत्सवों होली, दीपावली, निकाह, विवाह आदि का चित्रांकन भी इस शैली में सुचारू रूप से हुआ है जिनके चित्रण में कुछ महिलाएं दक्षाबीबी तथा सोना कुमारी भी आगे आयी हैं।

अत: कहा जा सकता है कि कलाएँ मनुष्य जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु उनमें काव्य तथा चित्र का महत्त्व अक्षुण्ण है। शब्दों तथा रंगो के माध्यम से अंकित चित्र कला के दोनों रूपों (काव्य तथा चित्र) को मजबूत कर देते हैं। रेखाओं और रंगों द्वारा चित्रांकन का आदिकाल से एक स्वरुप निर्मित होता है जिसमें चित्रांकन के स्तर पर देश, काल, तथा वातावरण के प्रभाव स्वरुप निरंतर बदलाव होता गया। समय के साथ यह कला और अधिक दृढ होकर अपने में काव्यग्रन्थों को समाहित करती चली गयी। चित्रांकन की परम्परा में चित्रांकन की विविध शैलियां जहाँ चित्रों के अंकन में विविध स्वरूपी हैं वहीं कई धार्मिक ग्रंथों व काव्य ग्रंथों यथा-भागवतपुराण, महाभारत, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि को सचित्र प्रस्तुत कर उन्हें कालजयी तथा और अधिक प्रभावशाली बना देती है साथ

ही काव्यग्रन्थों में अपनी शैलियों के चित्रांकन की परम्परा को चिरकाल तक सुरक्षित बना पाने में भी ये शैलियाँ महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भः

1. वर्मा, श्याम बहादुर; वर्मा, मधु; विश्व सूक्ति कोश; प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 340
2. वही; पृष्ठ. 340
3. वही; पृष्ठ. 340
4. प्रसाद, कलिका (सं.); बृहत् हिंदी कोश; ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी; संस्करण: 1984
5. शुक्ल, रामचन्द्र; कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदस टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 69
6. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ.15
7. शुक्ल, रामचन्द्र; कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदस टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 70
8. ओझा, सीमा (सं.); भारतीय कला उद्भव और विकास; प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण 2015; पृष्ठ. 18

9. वर्मा, श्याम बहादुर; वर्मा, मधु; विश्व सूक्ति कोश; प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 18
10. गुप्त, नर्मदा प्रसाद (लेख); चौमासा; आदिवासी लोककला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल; पृष्ठ.19
11. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ.24
12. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ.92
13. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 16
14. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 27
15. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 33
16. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 39
17. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक

डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 34

18. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 36
19. वही; पृष्ठ. 58
20. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 93
21. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.2
22. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 25
23. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 94 -95
24. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 107
25. प्रसाद, जनेश्वर; रीतिकालीन कलाएँ और युग जीवन; प्रयाग प्रकाशन, 164 ए, त्रिपाठी कालोनी, सोहबतियाबाग, इलाहाबाद; संस्करण 1990; पृष्ठ. 35
26. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 34

27. वही; पृष्ठ. 38

28. वही; पृष्ठ. 38

29. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 39

30. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 59

31. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.9

32. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 42

33. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 100

34. वही; पृष्ठ. 101

35. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 115

36. वही; पृष्ठ. 116

37. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 26

38. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन

मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 60

39. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 120
40. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.3
41. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण 2016; पृष्ठ. 186
42. वही; पृष्ठ. 206
43. वही; पृष्ठ. 200
44. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 80
45. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 34
46. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 99
47. वही; पृष्ठ. 110

48. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 25

49. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 114

50. वही; पृष्ठ. 114

51. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 116

52. वही; पृष्ठ. 117

53. वही; पृष्ठ. 121

54. गैरोला, वाचस्पति; भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 215

55. सीमा ओझा (सं.); भारतीय कला उद्भव और विकास; प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2015; पृष्ठ. 128

56. दास, रायकृष्ण; भारत की चित्रकला; भारत-दर्पण ग्रंथमाला, प्रकाशक तथा विक्रेता भारती भण्डार, इलाहाबाद ; संस्करण: 1996; पृष्ठ. 110

तृतीय अध्याय

बिहारी काव्य में चित्रांकन के आयाम

काव्य और चित्र का सम्बन्ध प्राचीन काल से रहा है। चित्र और काव्य दोनों ही अभिव्यक्ति का माध्यम हैं अर्थात् कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भावनाओं का परिणाम है। इनमें अंतर केवल इतना है कि चित्र में अभिव्यक्ति रंगों तथा रेखाओं के माध्यम से होती है और काव्य में कलम तथा शब्दों के माध्यम से। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि काव्य में चित्र और चित्र में काव्य की उपस्थिति नगण्य होती है बल्कि चित्र और काव्य के सम्बन्ध में ऐसे कई प्रमाण हैं, जिनमें चित्रों को देखकर काव्य सृजन भी हुआ है और काव्य के आधार पर चित्रों का निर्माण भी। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो काव्य में चित्रों की उपस्थिति के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल की भी सहमति काव्य में अर्थग्रहण ही नहीं, बिम्बग्रहण को भी महत्त्वपूर्ण मानकर हुई है। एक ओर कवि होरेस चित्र को बिना शब्दों की कविता कहकर परोक्ष रूप से काव्य में चित्र की उपस्थिति की और संकेत करते हैं तो वहीं सिमोनीडिज भी चित्र को मूक कविता कहकर कविता को मुखर चित्र कहलाने के पक्ष में हैं। प्रेमचंद के लिए तो कविता की परिभाषा ही तस्वीर खींच देने में है। अब ऐसी स्थिति में इतने विद्वानों के विचारों से प्रभावित हुए बिना भी रह पाना संभव नहीं है। इसलिए अगर सही तरीके से देखा जाये तो चित्रकाव्य अर्थात चित्र में रंगों के माध्यम से कविता भी संभव है और काव्य में शब्दों के माध्यम से चित्र की सृजना भी। इसके लिए जो महत्त्वपूर्ण आवश्यकता कवि में होनी चाहिए वह है 'कल्पना की समाहारशक्ति' के साथ 'भाषा की समासशक्ति'। इसी

'कल्पना की समाहारशक्ति' तथा 'भाषा की समासशक्ति' के सहारे साहित्यकार शब्दों में चित्र बनता है और संगीत का गुंजन भी करता है। यही प्रतिभा कवि बिहारी में भी रही। यही कारण है कि उनके काव्य में भावों, भंगिमाओं, मुद्राओं तथा क्रियाओं का ऐसा वर्णन दोहा शैली में हुआ है कि वह हमारे मानस पटल पर दृश्यमान होकर सजीव हो उठता है, "दोहे जैसे अल्पवर्ण छंद में अनगिनत मानवीय भावनाओं को बाँधकर रखना आसान कार्य नहीं हैं।...सम्पूर्ण प्रसंग को एक चित्र का स्वरुप दे देना बिहारी की अपनी कुशलता है।"[1]

कवि बिहारी के सम्पूर्ण काव्य का बड़ा भाग चित्रों की एक अलबम के रूप में हमारे सामने उभर कर आता है जिसे लगभग सभी आलोचक विद्वानों ने यदा-कदा स्वीकार किया है। इसी सम्बन्ध में डॉ. हरवंशलाल शर्मा का कथन बिहारी के काव्य का प्रमुख गुण चित्रमयता को मानते हुए है, "नायिका की विविध मुद्राओं, चेष्टाओं, व्यापारों और अनुभावों के चित्रण में बिहारी अनुपम हैं। चित्रमयता उनके काव्य का प्रमुख गुण है। पूरी सतसई रमणी की विभिन्न मुद्राओं के अनेक चित्रों का सुंदर अलबम कही जा सकती है।"[2] वहीं गुरुदेव नारायण के लिए, "बिहारी की तूलिका ने तन सौन्दर्य के जो चित्र अंकित किये हैं, वे दोहे जैसे छोटे छंद में भी साकार होकर बोलते हैं।"[3] डॉ. किशोरीलाल तो बिहारी के काव्य को स्पष्ट रूप से पेंटिंग की संज्ञा ही दे देते हैं, "कहने की आवश्यकता नहीं कि बिहारी ने सुदीर्घ साधना और सतत कव्याराधना के बल से शब्द, अर्थ एवं वर्ण में जैसी 'पेंटिंग' की है, वह सब के लिए सहज नहीं।"[4] कवि बिहारी की इस पेंटिंग में स्थिर तथा गतिशील चित्र दोनों ही हैं। आवश्यकता है केवल बिहारी के इन चित्रात्मक संकेतों को समझने की और इन्हें रंग तथा तूलिका के माध्यम से आकार देने की, जो कार्य कुछ उत्तर मध्यकालीन तथा आधुनिक चित्रकारों ने किया भी है। उन्होंने बिहारी के अनेक दोहों से प्रभावित होकर उन्हें अपनी विशेष

कला शैली में चित्रांकित किया है जिसमें विशेषतः मेवाड़, काँगड़ा, बसोहली, गुलेर, और जयपुर शैली में निर्मित बिहारी के चित्र बिहारी की चित्रांकन प्रतिभा को मुखर कर रहे हैं।

इस दृष्टि से देखा जाये तो बिहारी की सतसई का चित्रण दो रूपों में उपलब्ध होता है - प्रथम, जिसमें सम्पूर्ण सतसई के अधिकतम दोहों का चित्रांकन राजाओं, सामंतों तथा कलाप्रेमियों ने कराया, जिसके चित्र उदयपुर तथा जयपुर के संग्रहालयों में भी देखे जा सकते हैं, द्वितीय जिसमें बिहारी के स्फुट दोहों का चित्रण है इसके चित्र काँगड़ा क्षेत्र के संग्रहालयों में सहज ही मिल जायेंगें।

बिहारी के कुछ काव्य चित्र ऐसे भी हैं जिन दोहों में चित्र की संभावनाएँ तो बहुत हैं परन्तु उन दोहों पर अभी तक कोई चित्र हमारी जानकारी में उपलब्ध ही नहीं हो पाया है। ऐसे में इन दोहों में उभारा गया चित्रांकन का वैशिष्ट्य अभी भी उजागर होना बाकी है। इसी आधार पर हमनें बिहारी के सम्पूर्ण काव्य में चित्रांकन के विविध आयामों को समझनें के प्रयास में इनके काव्य-चित्रों को निम्न श्रेणियों में बाँटा है-

1. बिहारी के काव्य पर एक से अधिक शैली में निर्मित हुए चित्र

2. बिहारी के काव्य पर एक शैली में निर्मित हुए चित्र

इनमें एक तरफ बिहारी के कुछ वे दोहे भी हैं जिसमें चित्रांकन का स्पष्ट रूप झलकता है परन्तु जिससे संबंधित चित्र हमें प्राप्त नहीं हो पाये हैं। उनका भी जिक्र इसी श्रृंखला में हमनें चित्रांकन की दृष्टि से किया है।

3.1 : बिहारी के काव्य पर एक से अधिक शैली में निर्मित हुए चित्र

(1)

“अहे, दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।

नीकैं है छींकै छुवै ऐसैं ई रहि, नारि ।।”[5]

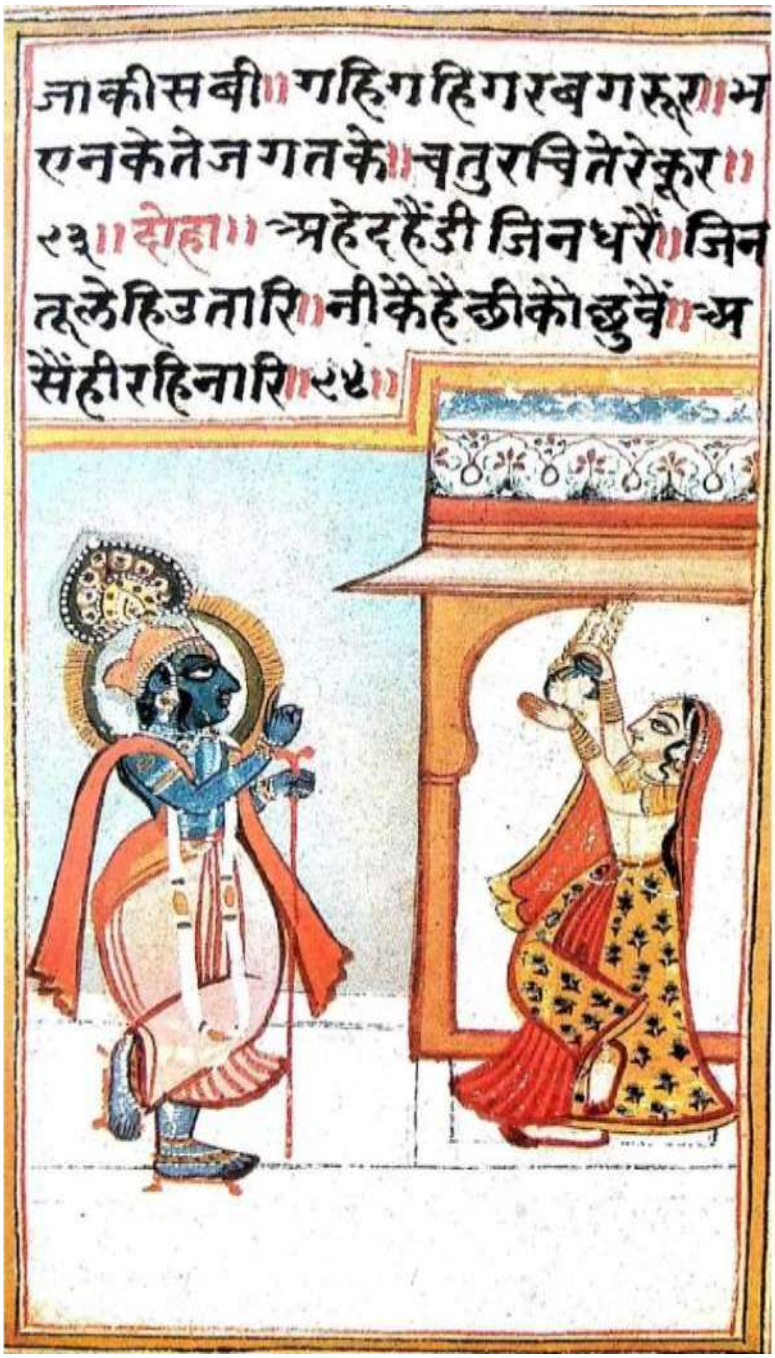

परिशिष्ट : चित्र - 1

अहे, दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।

नीकैं है छींकै छुवै ऐसैं ई रहि , नारि ॥

परिशिष्ट : चित्र - 2

कवि बिहारी ने इस दोहे में नायिका की भंगिमाएँ तथा चेष्टाओं को देख कर नायक के मन में उभरे भावों का वर्णन किया है। नायिका द्वारा छींके पर से दहेंड़ी उतारते और रखते समय जो चेष्टाएँ हुई हैं वह नायक को बहुत प्यारी लग रही है। इसीलिए नायक नायिका को कुछ देर ऐसे ही देखना चाहता है, जिसके लिए वह नायिका से कहता है कि - (भावार्थ) अरी, तू छींके पर कभी दहेंड़ी रखती है और कभी उतार लेती है। तेरी ये चेष्टाएँ इतनी मनमोहक हैं कि तू दहेंड़ी रखना और उतारना करने की बजाय कुछ देर छींके को ऐसे ही छुए रह ताकि तेरा यह मनमोहक रूप मैं कुछ देर ऐसे ही देखता रहूँ।

बिहारी के काव्य का यह दृश्य रूप बसोहली तथा काँगड़ा शैली के एक चित्र में चित्रांकित हुआ है। इन चित्रों में उक्त दोहे से निर्मित शब्द चित्र से प्रेरणा लेकर उसे पूरी भावप्रवणता के साथ रंगों तथा तूलिका के माध्यम से उभारा गया है। काँगड़ा तथा बसोहली इन दोनों शैलियों में ही नायक तथा नायिका के रूप में श्री कृष्ण और राधा को चित्रित किया गया है। इनमें नायिका को छींके से दहेंड़ी को उतारते और रखने के क्रम में दहेंड़ी को छूते हुए खड़े रहने की मुद्रा का अंकन हुआ है, जिसे देखते हुए नायक का चित्रण भी इन चित्रों में हुआ है जो नायिकाओं को इसी अवस्था में देखते और निहारते रहना चाहते हैं। उनके इस भाव के पीछे कारण नायिका की इस अवस्था में कमनीय तथा मनमोहक मुद्रा है जिसका इन दोनों ही शैली के चित्रों में नायक की आँखों में गहन भावों के साथ अंकन हुआ है। काँगड़ा शैली के चित्र में नायिका राधा के छींका छूते समय नायक कृष्ण द्वारा हाथों की विशिष्ट मुद्रा द्वारा जो राधा को ऐसे ही बने रहने का संकेत करते हुए चित्रित किया गया है उसने दोहे के भावों को संजोये इस चित्र को और अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बना दिया है। इन चित्रों में राधा की चेष्टाएँ और काँगड़ा शैली में कृष्ण की मुद्राओं के साथ भावप्रवणता और बसोहली शैली के चित्र में कृष्ण के आँखों की भावप्रवणता बड़ी ही रसमयी बन पड़ी है। इन दोनों ही शैली के

चित्रों में विशेष अंतर शैलीगत ही है, जिसमें राधा और कृष्ण के चित्र और आकृतियाँ अपनी-अपनी शैली के अनुसार ही चित्रित हुई है। काँगड़ा शैली के राधा-कृष्ण दोनों ही अधिक सुंदर, मध्यम आकार, पतले तथा कोमलांगी हैं और परम्परागत वस्त्रों को धारण किये हैं। जबकि बसोहली शैली में राधा-कृष्ण का कद थोड़ा छोटा, ढालदार माथा, एक ही प्रवाहदार लम्बी नासिका, कमल के समान नेत्र हैं तथा परम्परागत वस्त्रों को धारण किये हुए भी कृष्ण और राधा का रूप यहाँ काँगड़ा के चित्र की तरह सामान्य स्त्री-पुरुष जैसा न रहकर थोड़ा प्रतापी भगवान कृष्ण और राधा जैसा चित्रित हुआ है। बसोहली शैली के इस चित्र में बिहारी के एक अन्य दोहे का भी अंकन हुआ है परंतु वह इस चित्र के छायांकन से स्पष्ट तौर पर संबंधित तो नहीं है इसी कारणवश हमनें उस दोहे के अनुरूप इस चित्र का वर्णन नहीं किया है। इसे बस चाहें तो दहेंड़ी उतारती हुई नायिका के सौन्दर्य पर लागू कर सकते हैं जैसे ऐसे दहेंड़ी उतारते हुए नायिका का सौन्दर्यांकन करने में सभी बड़े बड़े चित्रकार असहाय हुए जा रहें है। इनमें रंगयोजना का भी भारी अंतर परिलक्षित होता है। बसोहली शैली के चित्र में हमेशा की तरह लाल, पीले और नीले रंग के साथ कुछ गुलाबी रंग को भी प्रयोग में लाकर चित्र को आकर्षक बनाने का प्रयास हुआ है। काँगड़ा शैली के चित्र में चटकीले रंगों से परे शांतिपूर्ण रंगों से चित्र को उभारा गया है जो प्रेम के इस विनोदपूर्ण वातावरण में अधिक प्रभावी बन गया है।

बसोहली शैली के उक्त दोहा आधारित चित्र में पीले स्वर्ण तथा लाल रंग का हाशिये में प्रयोग हुआ है जबकि काँगड़ा शैली के इस चित्र में आलेखन युक्त हाशिये का प्रयोग है। इन दोनों ही चित्रों को देखने पर इनमें दोहे के भावों का ऐसा संयोजन बिहारी की चित्रांकन क्षमता का ही प्रभाव है।

(2)

"बुधि अनुमान , प्रमान श्रुति कियें नीठि ठहराइ।

सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख, लखी नहिं जाइ।।"[6]

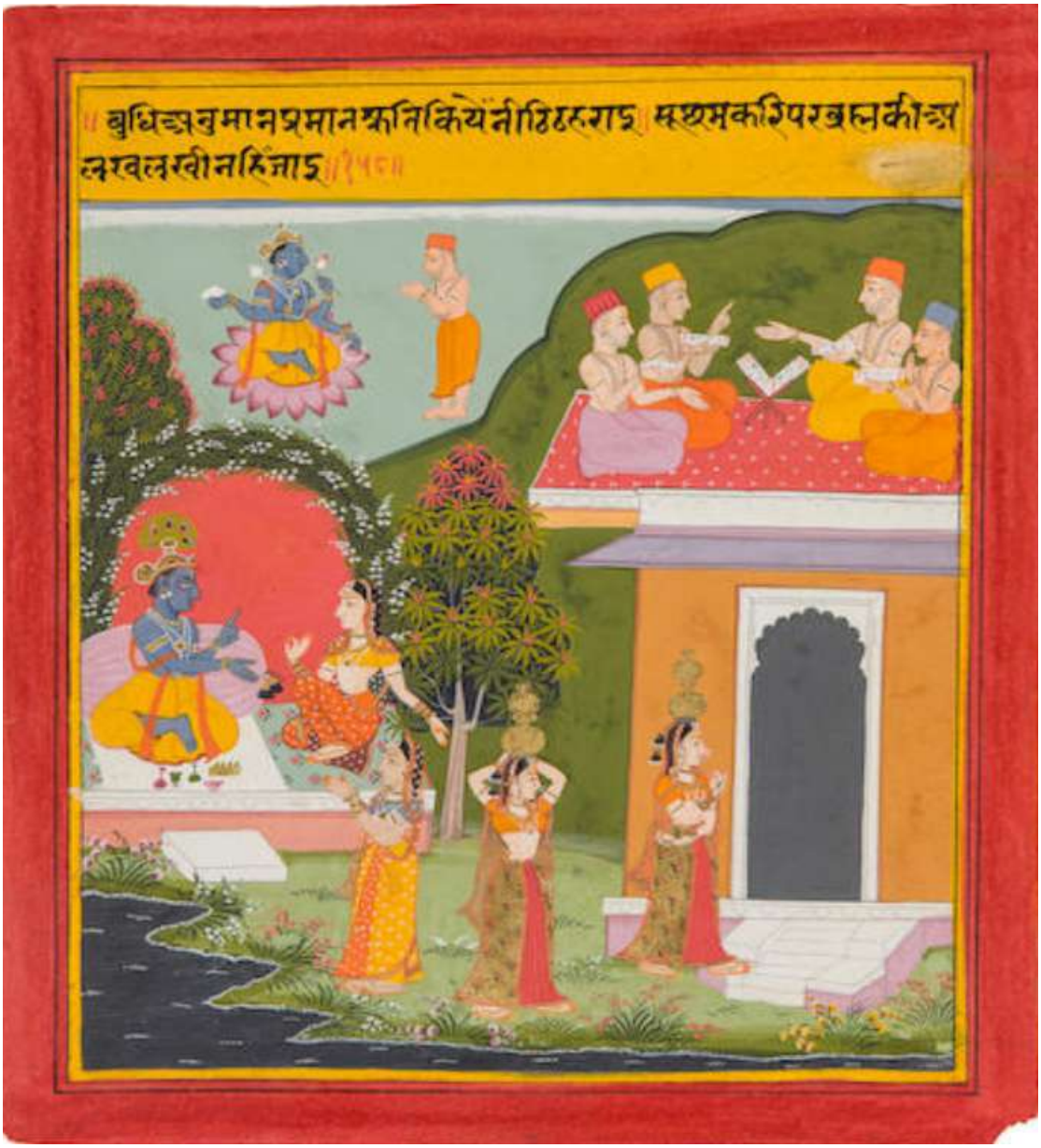

परिशिष्ट : चित्र - 3

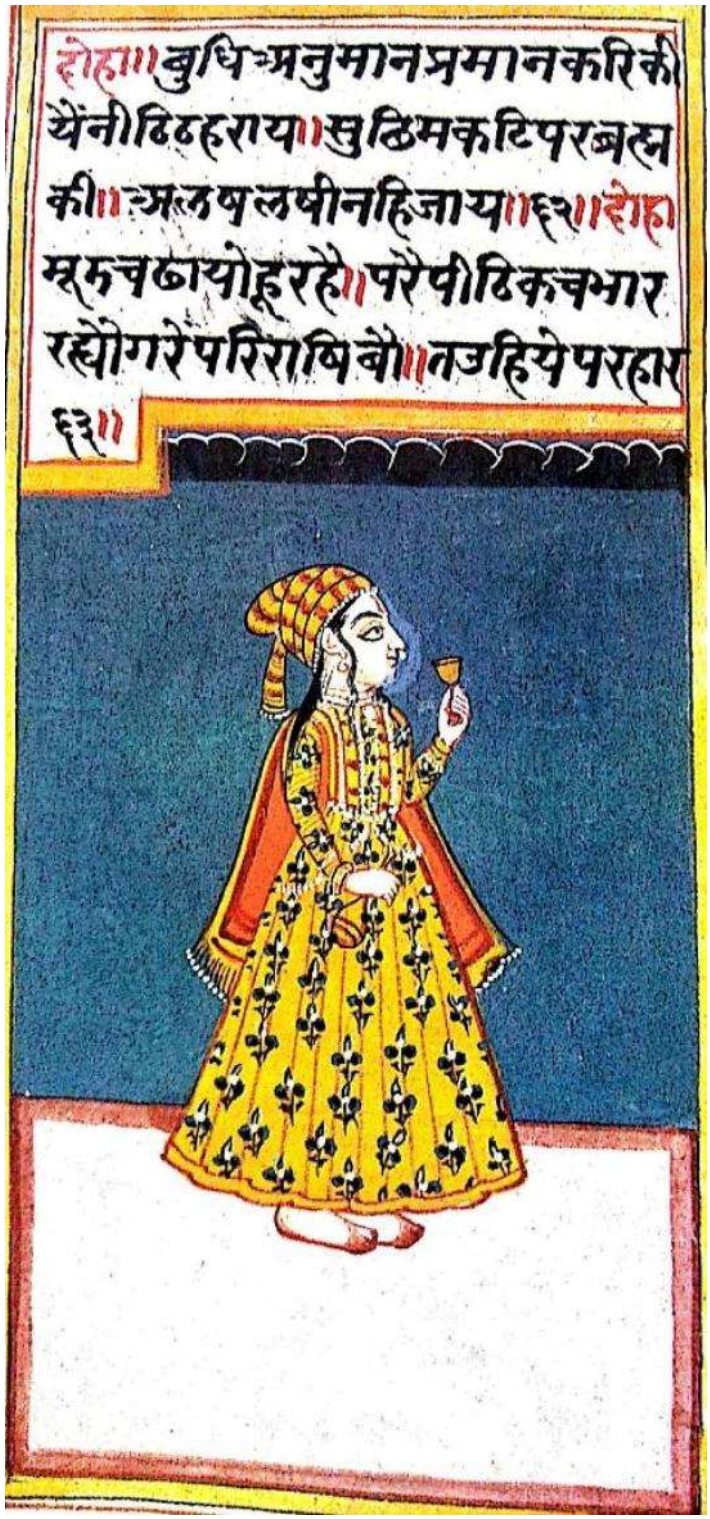

दोहा॥बुधिअनुमानप्रमानकरिकै
येंनीठिठहराय॥सुठिमकटिपरब्रह्म
की॥अलषलषीनहिजाय॥६२॥दोहा
मृकुचढायोहूरहै॥परैपीठिकुचभार
रह्योगरेपरिराषिवौ॥तउहियेपरहार
६३॥

परिशिष्ट : चित्र - 4

इस दोहे में नायिका की अति सूक्ष्म कटि को ब्रह्मा के समान अलक्षित बताते हुए कवि बिहारी कहते हैं कि- तेरी कटि की सूक्ष्मता ब्रह्मा की तरह चरम दृष्टि से नहीं दिखाई पड़ती। जिस प्रकार बुद्धि द्वारा तर्क करने पर कि ब्रह्मा नहीं हैं तो यह संसार कैसे ठहरा हुआ है और श्रुतियों में जो ब्रह्मा का अस्तित्व बताया गया है उसको प्रमाण मानने पर ही ब्रह्मा की सत्ता स्थापित लगती है। उसी प्रकार, तेरी सूक्ष्म कटि पर विचार करते हुए कि यदि कटि नहीं है तो यह ऊपर तथा नीचे के शरीर का भाग कैसे जुड़ा है? परन्तु, लोगों को कहते हुए सुनने पर कि तेरी भी कटि है उसको मानते हुए ही तेरी कटि का अस्तित्व मेरे भीतर ठहरता है अन्यथा तो तेरी कटि इतनी सूक्ष्म है कि मुझे तो वह नहीं है ही लगती है।

यहाँ बिहारी के इस दोहे में नायिका की सूक्ष्म कटि की अवस्था विचारणीय है जिस अवस्था को बसोहली शैली तथा मेवाड़ शैली के दो चित्रकारों ने बिहारी के उक्त दोहे को आधार लेकर निर्मित किया है। बसोहली शैली में निर्मित चित्र को देखकर इस दोहे का ऐसा कोई अनुमान नहीं लगता क्योंकि इसमें सिर्फ एक राजा या नायक का ही खड़े हुए चिंतन की मुद्रा में हाथ में रस पात्र लिए चित्र खींचा गया है। इसके अलावा इस चित्र में और कुछ ऐसा नहीं है जिससे इस दोहे के भावों का कुछ भी सम्बन्ध हो। इस चित्र में उक्त भाव का बोध चित्र में ही ऊपर की ओर चित्रकार द्वारा काले रंग से लिखा गया बिहारी का यह दोहा है जिससे इस चित्र के मंतव्य का ज्ञान हो पाता है।

मेवाड़ शैली के चित्र में इस पूरे दोहे के भाव को एक ही चित्र में चार दृश्यों के माध्यम से भाव-बोध, विचारणीय मुद्रा तथा प्रश्न की जिज्ञासा को चित्रित किया गया है। इसके एक दृश्य में वेद को बाँचते हुए कुछ विद्वतजनों का चित्र है जो वेद में सूक्ष्म कटि को ब्रह्मा की उपस्थिति के समय से समझने का प्रयास कर रहे हैं। वहीं दूसरे दृश्य में ब्रह्मा और एक विद्वान

को चित्रित किया गया है जिसमें ब्रह्मा के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा वह विद्वान इस बात की ओर संकेत करता है कि बहुत प्रयत्न के बाद ब्रह्मा को सूक्ष्म रूप में जानने के प्रयत्न से ही वह लक्षित होते हैं, इसी प्रकार नायिका ये तेरी सूक्ष्म कटि है। इस चित्र के तीसरे दृश्य में राधा रुपी नायिका तथा कृष्ण रुपी नायक साथ बैठे हुए हैं जिसमें नायक राधा की कटि की सूक्ष्मता पर विचारमग्न है। चौथे दृश्य में दो सखियों के साथ जाती हुई राधा का चित्र है जिसके बारे में कृष्ण यह सोच रहे हैं कि यदि कटि नहीं है तो यह ऊपर और नीचे के बीच का भाग जुड़ा कैसे है। इस प्रकार मेवाड़ शैली का यह चित्र पूरे दोहे के भावबोध को सम्पूर्ण तथा सफल रूप में रंगों के माध्यम से संप्रेषित करता है।

इन दोनों चित्रों में रंगयोजना का भी विशेष महत्त्व है। बसोहली शैली के चित्रों में प्रयुक्त रंग अधिक चटकीले हैं, जबकि उन्ही रंगों का मेवाड़ शैली के चित्रों में प्रयोग काम्य बन गया है।

इस प्रकार यह पूरा दोहा जिस भावबोध और मुद्राओं तथा भाव-भंगिमाओं के माध्यम से एक चित्र के चार दृश्यों में अंकन हुआ है वह जितना अधिक प्रशंसनीय है उतना ही बिहारी की चित्रांकन की क्षमता को उनके संकेतों द्वारा समझकर चित्र रूप में चित्रित कर प्रमाणित भी करते हैं।

(3)

"मेरी भव -बाधा हरौ , राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ।।"[7]

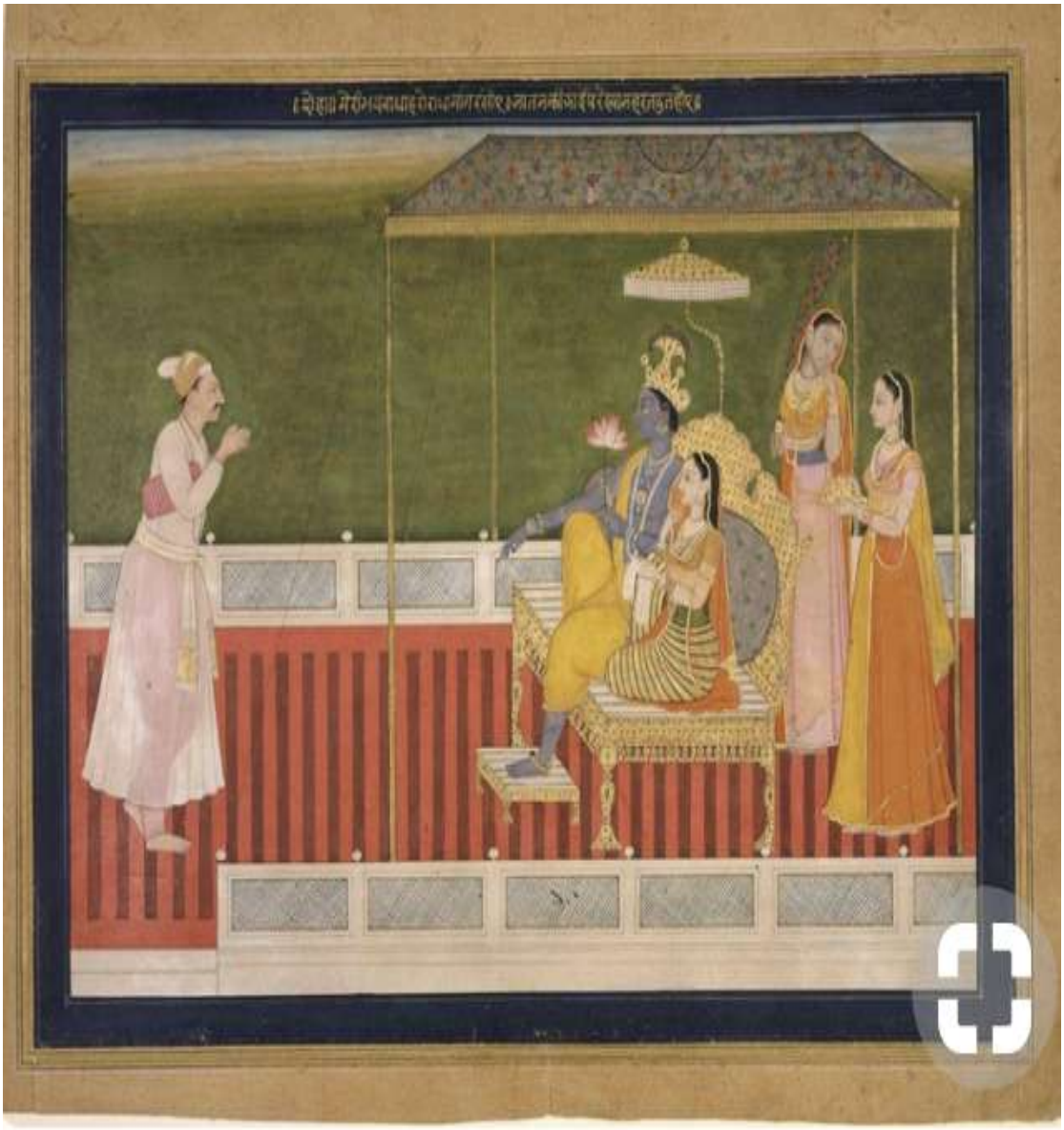

परिशिष्ट : चित्र - 5

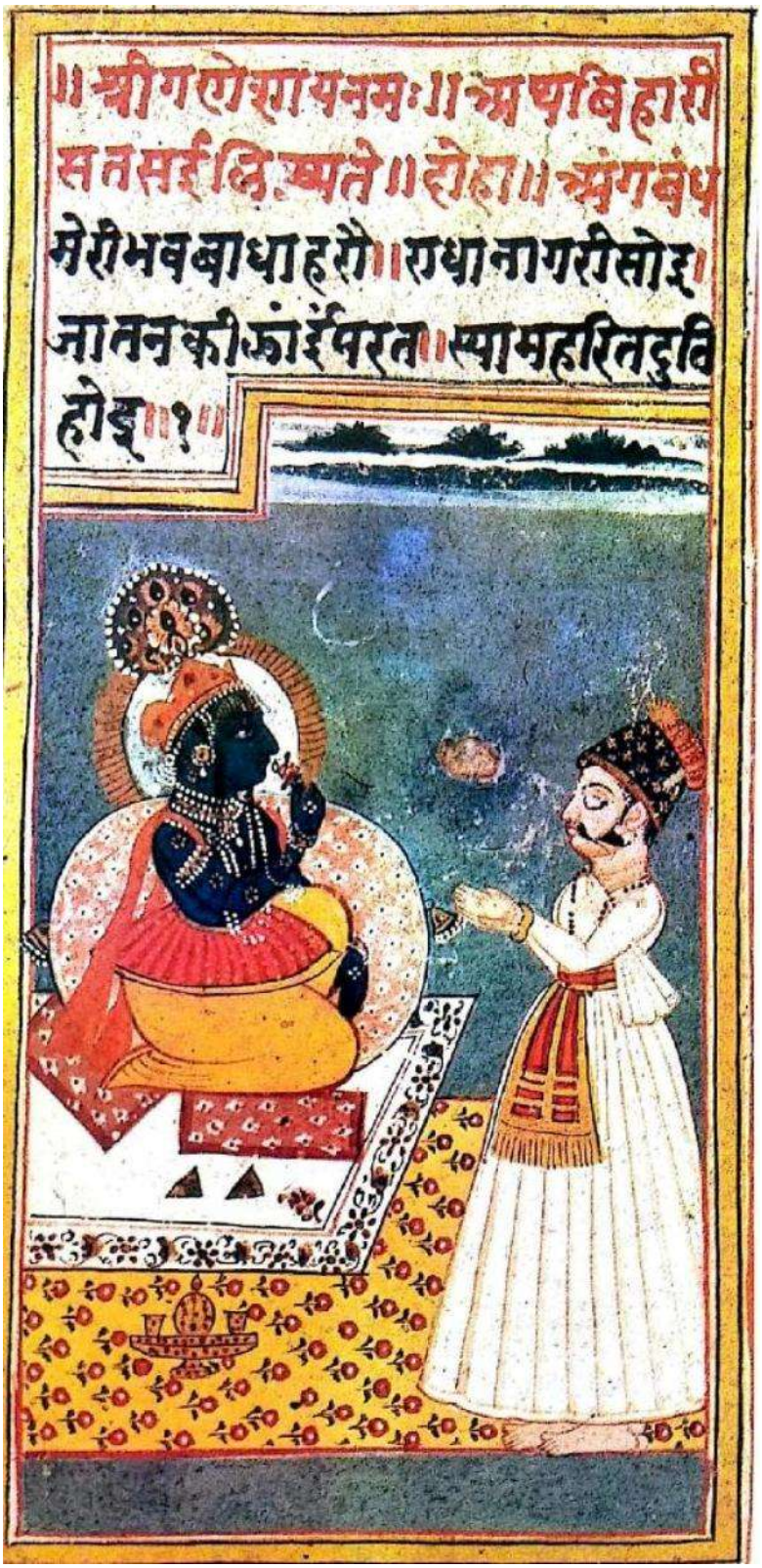
॥श्रीगणेशायनमः॥अथबिहारी
सतसईलिख्यते॥दोहा॥मंगबंध
मेरीभवबाधाहरौ॥राधानागरीसोइ।
जाननकीझांईपरत॥स्यामहरितदुवि
होइ॥१॥

परिशिष्ट : चित्र - 6

बिहारी का यह दोहा प्रार्थनापरक मंगलाचरण है जिसमें सतसई की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से सांसारिक बाधाओं को दूर करने की प्रार्थना निहित है। मंगलाचरण के रूप में रचित इस दोहे में श्लेष अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है, जिस कारण इस दोहे के तीन अर्थ निकलते हैं-

पहला अर्थ- हे वही नागरी राधा जिसके तन की झाँई अर्थात परछाँईं पड़ने मात्र से ही श्याम वर्ण वाले श्री कृष्ण हरे रंग की द्युति वाले हो जाते हैं, मेरी भव बाधा को हर लीजिये। इस दोहे में राधा की गुराई की प्रशंसा भी है कि उनके सुनहरे रंग की आभा से श्याम रंग भी हरा हो जाता है।

दूसरा अर्थ- कवि कहता है कि जिनके तन की झलक आँखों में पड़ने से श्रीकृष्ण हरे-भरे अर्थात् प्रसन्नचित हो जाते हैं, हे वही राधा मेरी भव बाधा को दूर कीजिये।

तीसरा अर्थ- हे वही नागरी राधा जिसके तन अर्थात रूप का ध्यान पड़ने से ही भक्त के हृदय में आने वाले श्याम अर्थात काले रंग रूप कल्मष इत्यादि भी कलुषता से रहित हो जाते हैं, सभी दुःख,दरिद्र दूर हो जाते हैं,वही राधा मेरी भव-बाधा का निवारण कीजिये।

मंगलाचरण दोहे में बिहारी की इस प्रर्थनापरक मुद्रा को दो चित्रकारों ने अपने-अपने चित्रों में उतारा है जिसमें एक चित्रकार ने पहाड़ी चित्रकला की बसोहली चित्रशैली तथा एक अन्य कलाकार ने राजस्थान की गुलेर शैली में इन चित्रों का अंकन किया है। इन दोनों ही

चित्रों में कवि बिहारी को घेरदार जामा पहने, पटका बांधे तथा पगड़ी धारण किए हुए कृष्ण के समक्ष हाथ जोड़े हुई मुद्रा में चित्रित किया गया है। इन दोनों ही चित्रों में एक बहुत बड़ा अंतर यह है कि बिहारी के इस मंगलाचरण में राधा को कृष्ण से विनती का माध्यम

बनाया गया है इसलिए दोनों ही चित्रों में राधा की उपस्थिति आवश्यक है, परन्तु, गुलेर शैली के चित्र में तो कृष्ण और राधा दोनों का ही चित्रण हुआ है जिनके सामने बिहारी को कुछ झुके हुए हाथ जोड़कर खड़े होने की मुद्रा में चित्रित किया गया है। किन्तु बसोहली शैली के इस चित्र में बिहारी मात्र कृष्ण के सामने हाथ जोड़े प्रार्थनापरक मुद्रा में चित्रित हुए हैं, इसमें राधा अनुपस्थित हैं। राधा कृष्ण के चरित्र की कोमलता और उनकी कमनीयता तथा स्थिति की सौम्यता का चित्र राजदरबार में गुलेर की शैली में चित्रित हुआ है। बसोहली शैली के चित्र में राधा की अनुपस्थिति तथा भक्ति जैसे भावों के समय में चटकीले रंगों यथा लाल, पीला आदि का प्रयोग आँखों में चुभता है। जबकि जयपुर शैली के चित्र में रंगों का प्रयोग शांतिपूर्ण भाव में मटमैले तथा काले रंग के हाशिये के भीतर राजसी वैभव और दरबार में शांत वातावरण के अनुरूप रंगों का प्रयोग हुआ है। राधा-कृष्ण की मुद्राएँ भी इस चित्र में उत्तम बन पड़ी हैं।

(4)

“धनि यह द्वैज ; जहाँ लख्यो,तज्यौ दृगनु दुख-दंदु।

तुम भागनु पूरब उयौ अहो ! अपूरबु चंदु ।।”[8]

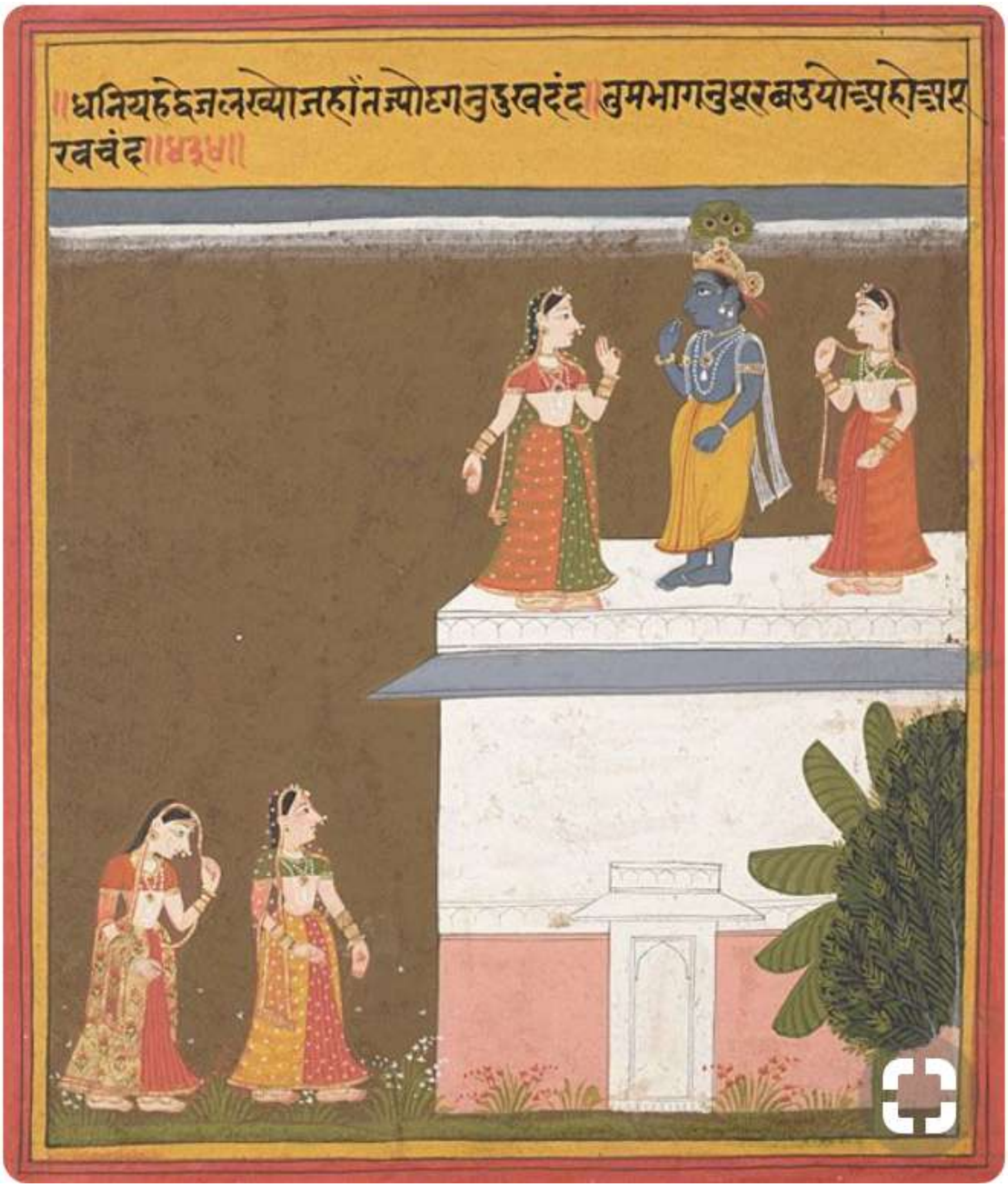

परिशिष्ट : चित्र - 7

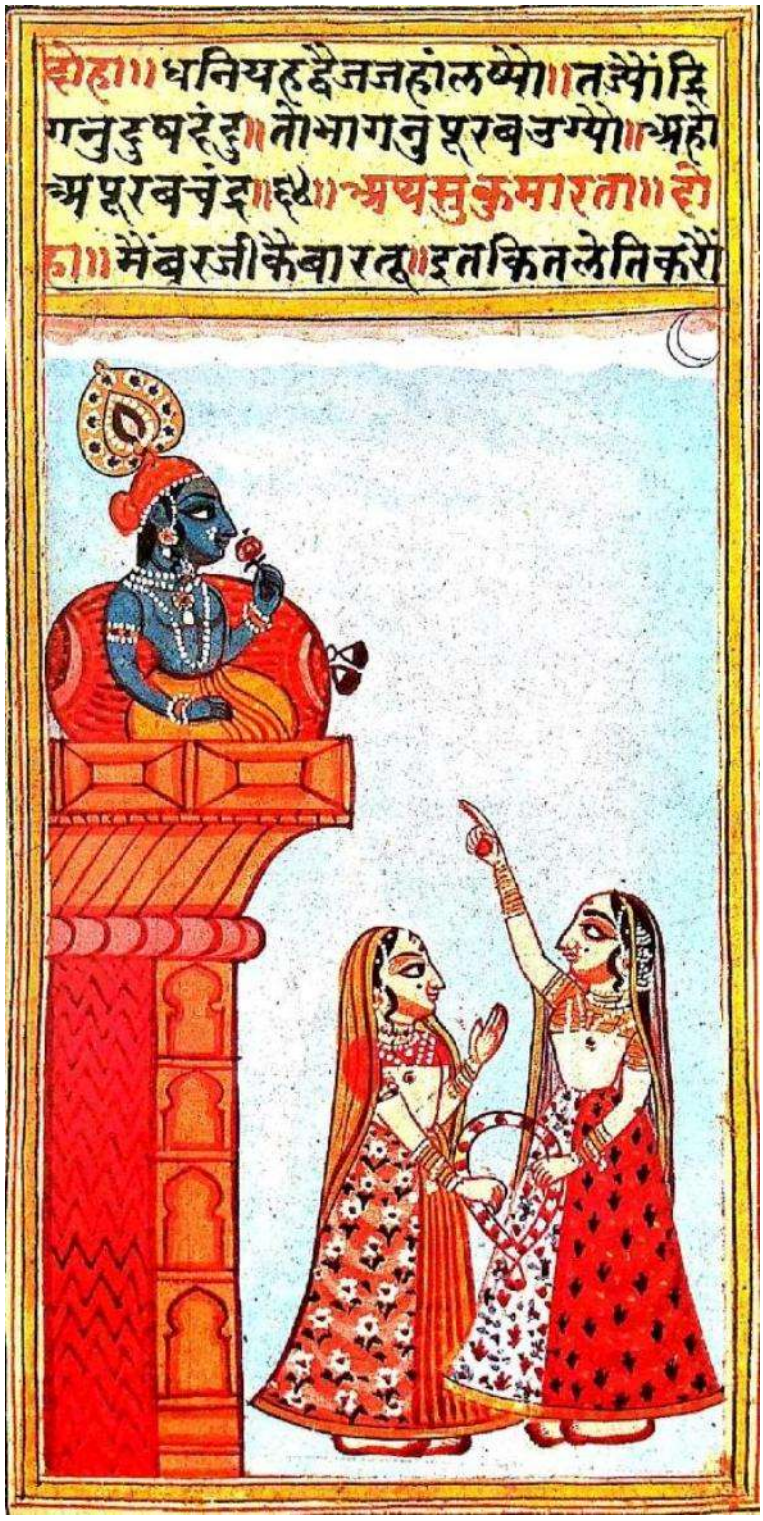

दोहा॥ धनियह द्वैजजहांलष्यो॥ तज्यौं द्वि
गनुदुषदंदु॥ तौभागनु पूरबउग्यो॥ अहो
अपूरबचंद॥ ६४॥ अथसुकुमारता॥ दो
हा॥ मेंबरजीकेबारदू॥ इतकितलेतिकरौं

परिशिष्ट : चित्र - 8

दोहे के प्रसंगानुसार कोई पूर्वानुरागी नायिका नायक को देखे बिना संतप्त हो रही है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया होने के कारण सखी चन्द्रमा देखने के उद्देश्य से ऊपर अटारी पर चढ़ी तो उसने नायक को उसके घर की अटा पर खड़े देखा। इसी बात को सखी नीचे आकर

नायिका से कहती है- (भावार्थ) यह द्वितीया पक्ष धन्य है क्योंकि इसी के कारण आज तुम्हारे भाग्य से अहो! पूरब दिशा में अपूर्व चन्द्रमा उदय हुआ है। अर्थात नायक इसी द्वेज में तुम्हारे भाग्य से पूर्व दिशा की ओर खड़ा दीख रहा है। तो हे सखी, तुम भी शीघ्र ही छत पर चढ़कर पूर्व में उदय हुए उस चन्द्रमा को देख लो क्योंकि जैसे ही तुम उसे देखोगी तैसे ही तुम्हारी आँखों में विरह के सभी दुःख-दर्द उसका ताप त्याग देंगे। इस घटना में विलक्षणता इस बात से है कि "जो नायक का मुखचन्द्र सखी नायिका को दिखाना चाहती है, उसमें अपूर्वताएँ ये हैं- प्रथम तो द्वितीय का चन्द्रमा केवल दो कला का होता है, पर वह पूर्ण है, दूसरे, द्वितीय के चंद्र का दर्शन पश्चिम दिशा में होता है, पर वह पूर्व दिशा में है; और तीसरे, चन्द्र-दर्शन से विरहिणी का संताप बढ़ता है, पर उसके दर्शन से ताप का शमन होगा।"[9]

उक्त दोहे में अगर गौर से देखा जाये तो ज्ञात होगा कि नायिका विरह की अवस्था से गुजर रही है इसलिए, सखी द्वारा नायक को देखे जाने पर वह शीघ्रता से नायिका को सूचित करती है जिससे नायिका अटारी पर चढकर सखी के साथ श्रीकृष्ण के सौंदर्य को देखकर अपनी विरहाग्नि को शांत कर सके।

बिहारी के इस पूरे भावबोध को मेवाड़ तथा बसोहली शैली के चित्रकारों ने रंगों के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया है जिसमें बसोहली शैली के चित्र में भावों की यह गहनता और भी अधिक हो गयी है। इसमें नायिका को सखी भवन के बाहर नीचे खड़े होकर ऊपर की ओर दृष्टि करके अटारी पर खड़े श्रीकृष्ण को देखते हुए चित्रित की गयी है। बसोहली

तथा मेवाड़ दोनों ही शैली के चित्रकारों ने नायक-नायिका के रूप में राधा-कृष्ण को चित्रित किया है। मेवाड़ शैली के चित्र में नायिका के मुख पर नायक अर्थात कृष्ण को देखकर ऊपजे हर्षातित भावों की चमक है जबकि बसोहली में सखी कृष्ण की ओर संकेतित दिशा में राधा के साथ खड़ी है। इस चित्र में एक अन्य दोहे का भी अंकन हुआ है परंतु इस चित्र के चित्रांकन से इसमें लिखित अन्य दोहे का स्पष्ट सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता जिस कारण इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है।

मेवाड़ के इस चित्र में चन्द्रमा का चित्र कहीं भी नहीं खींचा गया है परन्तु, बसोहली के चित्र में चित्रकार ने क्षितिज तथा चाँद को चित्रित किया है। जिसकी विशेषता है कि इन चित्रों में ऊँचा क्षितिज बना है जो कि ऊपर की ओर एक पट्टी के आकर का है। इसे देखते ही इस शैली को सरलता से पहचान लिया जाता है, "इस छोटे से पट्टीनुमा क्षितिज में ही रात्रि एवं दिन का चित्रण तारे तथा बादल आदि से किया गया है"[10]

रंगों के प्रयोग में चटकीले रंगों के साथ लाल, पीले, नीले तथा सफ़ेद रंग का प्रयोग बहुत ही सुंदर ढंग से बसोहली शैली में हुआ है क्योंकि लाल-पीले रंग और सोने से निर्मित हाशिये में लाल, पीले, हरे, नीले लगभग सभी रंगों का पार्श्व में प्रयोग सामान्य ढंग से किया गया है।

(5)

"छिनकु चलति, ठठुकती छिनकु भुज प्रीतम-गल डारि।

चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु-छटा सी नारि।।"[11]

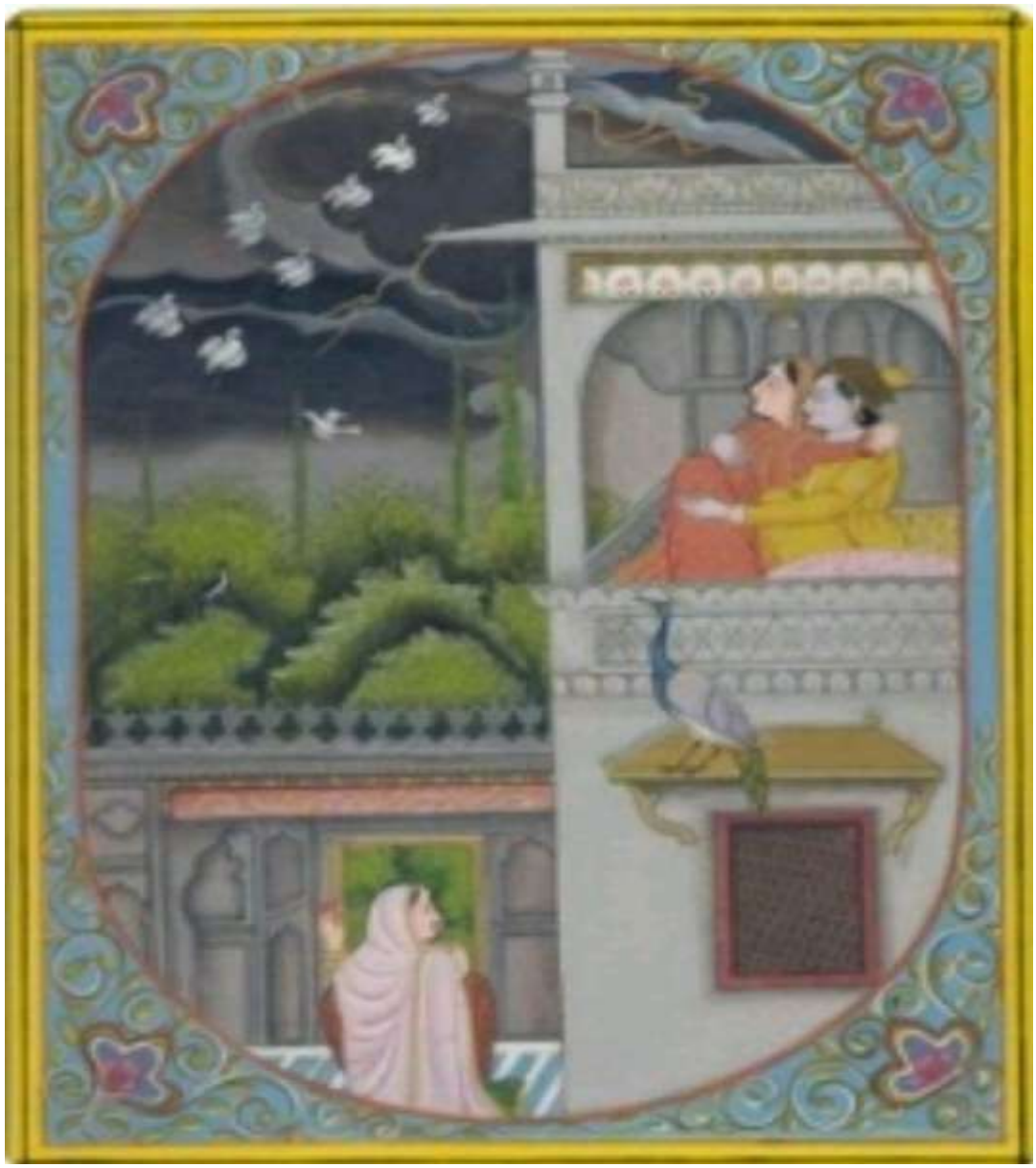

परिशिष्ट : चित्र - 9

परिशिष्ट : चित्र - 10

नायिका नायक के साथ अटारी पर चढ़कर उमड़ते घुमड़ते बादलों को देख रही है। इसी क्रम में वह कुछ चेष्टाएँ और क्रियाएँ भी कर रही है जिसे पूरे क्रम से बिहारी व्यक्त करते हैं कि- (भावार्थ) कभी वह नायिका प्रियतम के गले में हाथ डाले थोड़ा सा चलती है और फिर पल भर के लिए ठहर जाती है। नायिका स्वयं बिजली के समान लावण्यमयी होकर प्रियतम के साथ अटारी पर बादलों का उमड़ना देख रही है। इस दोहे का एक अर्थ बच्चन जी के शब्दों में भी इस प्रकार है, "बिजली की ज्योति की तरह लावण्यमयी नायिका घिरे हुए बादलों की शोभा निहार रही है। प्रियतम के गले में बाँह डालकर क्षणभर कभी चलती है और कभी क्षणभर के लिए ठिठक जाती है। 'भुज प्रियतम गल डारि' की व्यंजना घटा के प्रसंग में कितनी गूढ़ और मनोवैज्ञानिक बन पड़ी है।"[12]

बिहारी के उक्त दोहे में नायिका का प्रियतम के गले में भुजाएं डाले क्षण भर चलना, फिर क्षण भर के लिए ठिठकना आदि सभी मुद्राएँ तथा भंगिमाएँ पूरे चित्र को साकार कर देती हैं। ऐसे ही चित्र उक्त दोहे को आधार बनाकर बसोहली तथा काँगड़ा शैली में भी किसी चित्रकार द्वारा रचे गये परिलक्षित होते हैं। इन दोनों चित्रों में बिहारी के इस दोहे के भावबोध तथा नायक-नायिका की भाव-भंगिमाओं और चेष्टाओं को बिहारी के संकेतानुसार उभारा गया है परन्तु फिर भी इनमें कुछ अंतर अवश्य है जो इनका शैलीगत भेद हो सकता है। बसोहली शैली के निर्मित चित्र में नायक-नायिका राधा-कृष्ण के रूप में अटारी पर चित्रित किये गये हैं जबकि काँगड़ा शैली में वे स्पष्ट रूप में नायक-नायिका के रूप में ही अटारी पर चित्रित हुए हैं। बसोहली शैली के चित्र में बादलों में बिजली कड़कने का चित्रण विशेष है। इस चित्र में, "बादलों में नागिन के समान चमकती हुई दामिनी की चमक दिखाई गयी है। दामिनी की चमक को सोने के रंगों से दिखाया गया है।"[13] जबकि काँगड़ा शैली के चित्र में बादलों तथा बिजली के स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है और क्षितिज पर सारस पक्षियों को

भी उड़ते हुए दिखाया गया है। बसोहली शैली के चित्र में राधा-कृष्ण रुपी नायक-नायिका को खड़ी हुई मुद्रा में चित्रित किया गया है जबकि काँगड़ा शैली के चित्र में नायक-नायिका को सफेद संगरमरमर के भवन की अटारी पर बैठे हुए का चित्रण है। बसोहली शैली के मुकाबले काँगड़ा शैली के चित्र में नायक-नायिका का एक-दूसरे के गले में बाँहे डाले भावों का सम्प्रेषण, कमनीयता, प्रेमानुराग तथा कोमल वातावरण का चित्रण अधिक हुआ है, "काँगड़ा शैली की आकृतियों में अंग-भंगिमाओं एवं हस्त-मुद्राओं का सजीव एवं गतिपूर्ण अंकन हुआ है। स्त्री मुखाकृतियों में अद्वितीय सौन्दर्य, शालीनता और संयम प्रदर्शित है।"[14] बसोहली में आलेखन युक्त दरवाजे के भवन की अटारी पर खड़े राधा-कृष्ण की मुद्रा काँगड़ा शैली के चित्र के समक्ष भावप्रवणता में कमजोर दीख पड़ती है। रंगयोजना का ध्यान रखते हुए काली घटाओं के प्रभाव को दर्शाने हेतु पूरे दृश्य पर बादलों की काली छाया अनुसार रंगों को थोडा अँधियारा लिए रखा है। नायिका ओढ़नी तथा नायक को जामा और पगड़ी पहनाये हुए दिखाया गया है, जबकि बसोहली शैली के चित्र में चटकीले रंगों यथा पीला, लाल, हरा, सफेद रंग अधिक प्रयोग में लाया गया है।

3.2 : बिहारी के काव्य पर एक शैली में निर्मित हुए चित्र

(1)

"अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि-पट-जोति।

हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष-रंग होति।।"[15]

परिशिष्ट : चित्र - 11

बिहारी द्वारा रचित इस दोहे में राधा की सखी कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए देखकर आई है। जिसका वृत्तांत कृष्ण के सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए वह राधा को सुनाते हुए कहती है कि कृष्ण द्वारा बाँसुरी बजाने के निमित्त ज्योंही उस हरे रंग की बाँसुरी को अपने अधर से कृष्ण ने लगाया त्योंही उनके होठों की लालिमा, नेत्रों की श्यामलता तथा पट की पियराई की चमक से, कृष्ण के इस बहुरंगी सौन्दर्य के प्रभाव से वह हरे रंग की बाँसुरी भी इन्द्रधनुष के रंग सी रंग-बिरंगी हो गयी है। बिहारी का यह दोहा पढ़ते ही नेत्रों के समक्ष एक अदृश्य तस्वीर उभरने लगती है जिससे एक ओर कृष्ण सभी के सामने बाँसुरी बजा रहे हैं और दूसरी ओर सखी राधा को उस घटना का वृत्तांत सुना रही है। कृष्ण के सौन्दर्य का इस दोहे में शब्दों द्वारा चित्रांकन विशेष है। इस सौन्दर्य में कृष्ण के होठों की लालिमा, नेत्रों की श्यामलता और पट की पियराई इतनी मनमोहक और प्रभावशाली है कि कृष्ण के होठों से लगी बाँसुरी भी इस लालिमा, श्यामलता तथा पियराई के रंग में रंगकर इनके संयोग से इन्द्रधनुष जैसी बहुरंगी चित्रित हो जाती है।

बिहारी का उक्त दोहा सिर्फ शब्दों के चित्रांकन में ही नहीं रंगों द्वारा किये गये चित्रांकन में भी सफल है क्योंकि मेवाड़ शैली में बिहारी के इस दोहे पर बना एक चित्र प्राप्य है जिसमें इस दोहे में अभिव्यक्त सभी भाव और कर्म के साथ-साथ मेवाड़ शैली की सभी विशेषताएँ भी समाहित हैं। मेवाड़ शैली के उक्त दोहे पर निर्मित चित्र में मुख्यतः रंगयोजना के अनुरूप लाल, पीला तथा जोगिया रंग अधिक प्रयोग में लाया गया है तथा पार्श्व में कुछ और चटकीले रंगों यथा- नीला, काला आदि का भी उत्तम प्रयोग हुआ है। गोपियों के बीच बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण का चित्रण है, वहीं पास में सखी राधा को वह वृत्तांत सुनाने की मुद्रा में चित्रित है।

आकृतियों के चित्रण में सभी की नाक लम्बी तथा गर्दन और ठोड़ी के बीच के हिस्से को अधिक भारी दिखाया गया है। सभी स्त्रियों का चित्रण मेवाड़ के चित्रों के अनुरूप साज-सज्जा और आभूषण सुसज्जित किये गये हैं और सभी के वस्त्रों लहंगा, चुनरी, चुनरी पर फूलों से कलाकारी है। पारदर्शी चुनरी का चित्रण इस शैली की एक खास विशेषता है। मेवाड़ शैली का यह चित्र प्रकृति के चित्रण में भी विशेष बना हुआ है क्योंकि इस चित्र में यमुना नदी के जल को कालिया सर्प के प्रभाव के कारण काला ही चित्रित किया गया है तथा उमड़ते-घुमड़ते काले मेघों का चित्रण इस चित्र में सजीव बन गया है।

मेवाड़ शैली का यह चित्र बिहारी के उक्त दोहे को भावों, मुद्राओं तथा भंगिमाओं के आधार पर चित्रित करने में जितना सफल है उतना ही इसके चटकीले रंगों के संयोजन, प्रकृति के सजीव चित्रण तथा वेशभूषा और लयात्मक आकृतियों से इस दोहे में सजीवता आ गयी है।

(2)

"औंधाई सीसी, सु लखि बिरह- बरनि बिललात।

बिच हीं सूखि गुलाब गौ, छीटौ छुई न गात।।"[16]

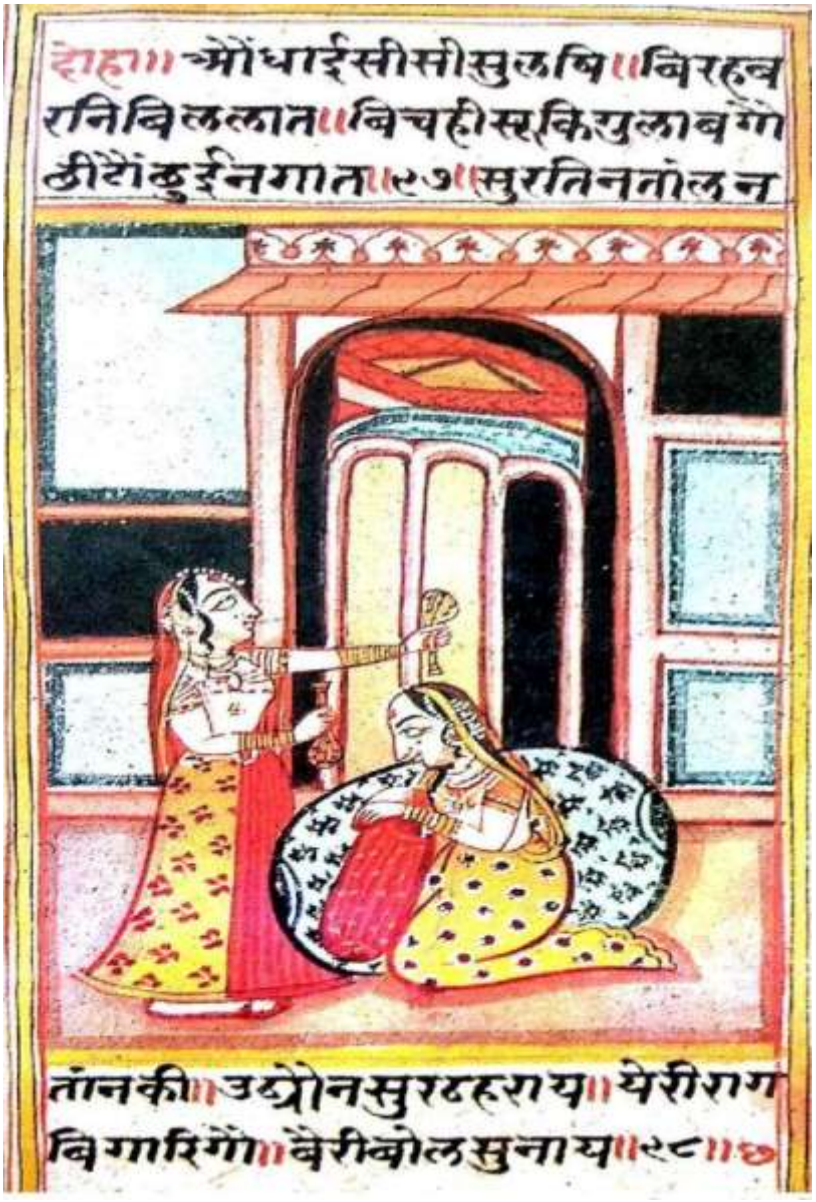

परिशिष्ट : चित्र -12

नायिका के विरह ताप का वर्णन सखी नायक से करती है कि- उसके पिय से बिछुड़ने का विरह ताप इतना अधिक है कि उसके विरह की भभकती अग्नि को देखकर उसे ठंडक पहुंचाने के निमित्त हमने जो गुलाब जल की भरी शीशी नायिका के ऊपर औंधाई वह भी उसकी विरह की ज्वाला में एक बूँद भी उस नायिका पर पड़े बिना ही बीच में ही सूख गयी अर्थात् विरह ताप से गुलाब जल भी वाष्प बनकर उड़ गया। इस दोहे में विरह का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन बिहारी ने किया है, परन्तु नायिका की विरह जन्य कृशता पर बसोहली शैली के चित्रकारों ने चित्र निर्माण किया है। इस चित्र में नायिका की सखी नायिका पर गुलाब जल की शीशी उड़ेलते हुए चित्रित है। इस चित्र में शीशी से एक भी बूँद नायिका के ऊपर गिरती हुई चित्रांकित नहीं हुई है। जिससे इस दोहे का अतिशयोक्तिपूर्ण भाव भी इस चित्र में समाहित हो गया है। परन्तु यह चित्र इन दोनों सखियों के विशाल अबोधपूर्ण नेत्रों, ढलवा

माथा, सुंदर वस्त्रों अर्थात् सौन्दर्य और सुंदर रंगयोजना यथा- पीले, लाल, नीले रंगों के मिश्रण के साथ चमकदार तथा प्रतीकात्मक रूप में हुआ है, "स्त्री मानव-प्रेम की प्रतीक है।...जन्म-जन्मांतर से व्यथित नारी रुपी आत्मा पुरुष रुपी परमात्मा या प्रियतम में विलीन होने के लिए विह्वल है।"[17] डॉ. अविनाश वर्मा के ये शब्द बसोहली शैली में विरह व्यथित स्त्री तथा रंगों की प्रतीकात्मकता में आत्मा का परमात्मा में विलीन होने की आकांक्षा लिए लौकिक, सांसारिक पक्ष के माध्यम से लोकोत्तर चित्रण को इन चित्रकारों का मंतव्य मानते हैं।

(3)

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन में करत हैं , नैननु हीं सब बात।।"[18]

परिशिष्ट : चित्र - 13

इस दोहे में आँखों की चेष्टायें प्रेम में कितनी महत्तवपूर्ण होती है इस भाव की झलक मिलती है। पूरा एक गतिशील चित्र बिहारी इस दोहे में अनेक क्रियाओं तथा चेष्टाओं के माध्यम से सामने लाकर रख देते हैं। प्रेम में संवाद के लिए शब्दों की जरुरत ही नहीं होती, वहाँ तो बिन कुछ कहें आँखों से ही पूरे संवाद हो जाया करते हैं। इसी पर बिहारी का यह दोहा है, जहाँ नायक और नायिका भवन में गुरुजनों के साथ बैठे हैं, ऐसे में वे दोनों लोक-लाज से स्पष्ट रूप में बात कर नहीं सकते तो इसके लिए बातचीत शुरू होती है आँखों के माध्यम से-

(भावार्थ) इनमें नायक-नायिका से आँखों की चेष्टाओं द्वारा कुछ कहता है, शायद रति क्रिया के लिए, जिसके लिए नायिका नट जाती है अर्थात् इंकार कर देती है। वह इंकार भी ऐसा है जिसमें 'मन में भाय मूड हिलाय' वाली स्थिति से। नायिका की इसी अदा पर नायक उसकी निषेधात्मक चेष्टा पर रीझ जाता है और नायिका को उसकी रीझ से सभाजनों के बीच लाज के कारण खीझ उत्पन्न हो जाती है। इस कथन, इनकार, रीझ, खीझ के बीच ही दोनों की आँखें पुनः एक-दूसरे से मिल जाती हैं जिससे नायक-नायिका प्रफुल्लित हो जाते हैं। नायक नायिका के झटपट खीझ को त्याग देने पर हँस देता है जिससे उसकी हँसी से नायिका लज्जित हो जाती है।

इस दोहे पर आधारित एक चित्र काँगड़ा शैली का भी मिलता है जिसमें एक भवन में कुछ लोग उपस्थित हैं उन्हीं में कृष्ण तथा राधा भी नायक-नायिका के रूप में उपस्थित हैं, परन्तु वे वहाँ लोक-लाज के कारण शब्दों की बजाय आँखों ही आँखों में पूरा वार्तालाप कर अपना प्रेम एक-दूसरे के लिए प्रकट कर रहे हैं। "नायिका कृष्ण की ओर देखती है तो कृष्ण ने अभिसार के लिए प्रार्थना की(कहत) तो नायिका ने सहज ही उस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया(नटत) नायक-नायिका की अस्वीकृति को स्वीकृति मानकर मुग्ध हो जाता है(रीझत)

और नायिका जब यह देखती है कि नायक ने उसकी ना का अर्थ हाँ लगाया, तो वह खीझ उठती है। नायिका की यह खीझ किंचित बनावटी है, क्योंकि उसका मूल उद्देश्य नायक को केवल खिझाना है. नाराज करना नहीं है। तदन्तर दोनों की दृष्टि मिल जाती है (मिलत) और फिर दोनों ही प्रेम के रंग में डूबकर प्रफुल्लित हो जाते हैं (खिलत)। तथापि दोनों को यह भी आशंका है कि कहीं उनके इस प्रणय-व्यापार पर, वहाँ उपस्थित किसी व्यक्ति की दृष्टि न पड़ गई हो। अतः स्वभावतः दोनों को लज्जा का भी अनुभव होता है (लजियात)।"[19]

इस प्रकार प्रेम की पूरी अभिव्यक्ति बिहारी के इस दोहे की तरह काँगड़ा शैली के इस चित्र में भी हो जाती है। चित्र में नायक-नायिका की चेष्टायें बिहारी ने कितनी मनमोहक खींची हैं, उसका कुछ अंश चित्र में भी दिखाई पड़ता है। नायिका नायक की ओर मुख किये हुए है और यह पूरा वार्तालाप सांकेतिक माध्यम से दोनों के बीच चल रहा है। रंगों का सुंदर प्रयोग इस शैली के चित्र में हुआ है। आलेखन द्वारा हाशिये निर्मित किये गये हैं तथा संगरमरमर से निर्मित भवन के भीतर दोनों का चित्रण हुआ है। जिसमें नायक-नायिका का चेष्टागत वर्णन दृश्यमान हो गया है।

(4)

"उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग-दागु।

छलकतु बाहिर भरी मनौ तिय-हियकौ-अनुरागु।।"[20]

परिशिष्ट : चित्र - 14

यह कथन खंडिता नायिका का है जो शब्द चित्रांकन का स्पष्ट उदाहरण है। यह चित्रांकन प्रेम और पीड़ा के भावों को व्यक्त करता है। नायक के प्रातःकाल में घर आने पर उसके हृदय के पास लटकी मानिक की उरबसी (गले में पहनने का आभूषण जिसका माणिक हृदय के पास लटका होता है) को देखकर आहत हुई है। नायक भूषण वसन का विपर्यय करके रात्रि में अन्य स्त्री के साथ विहार में लीन था। प्रातःकाल नायिका के पास जाने से पूर्व उसने अपने सम्पूर्ण वस्त्र तो बदल लिए, परन्तु वह उरबसी उतारना भूल गया, जिसे प्रातःकाल नायिका घर पर देख लेती है और उसकी पीड़ा व्यक्त करती हुई कहती है- (भावार्थ) यह जो तुम्हारे हृदय पर माणिक की उरबसी है यह मेरी आँखों में ठहर गयी है, इसे मैं पहचानती हूँ। अर्थात् मुझे यह उरबसी देखकर ज्ञात हो गया है कि कल तुम किसी अन्य के साथ केलि-क्रीड़ा में थे। वह व्यंजक ढंग से कहती है कि मेरे नेत्रों में जो तुम्हें न देख पाने के कारण एक जलन, चुभन, अग्नि स्वरुप थी वह अब तुम्हे देखकर और भी अधिक बढ़ गयी है। यह उरमानिक तुम्हारे पर ऐसी शोभा दे रही है जैसे तुम्हारे भीतर का स्त्री-विषयक हृदय का अनुराग परिपूर्ण होकर बाहर झलक रहा हो।

बिहारी द्वारा रचित इस दोहे पर मेवाड़ शैली में एक चित्र भी बना है जिसमें दो दृश्यों को दिखाया गया है। एक दृश्य काले रंग के वातावरण में दीपक की रोशनी से तथा नायक का अन्य स्त्री के साथ केलि में मग्न होना स्पष्टत: रात्रि की ओर संकेत करता है तो वहीं दूसरे दृश्य में नायक को नायिका के सामने बैठा हुआ चित्रित किया गया है। इस पूरे चित्र में रंगयोजना विशेष है। पूरे चित्र को प्रधानत: लाल और पीले स्वर्ण रंग के बॉर्डर से सुसज्जित किया गया है। रात्रि के दृश्य में आस-पास काले रंग से अँधेरा तथा जलता हुआ दीपक दिखाकर रात्रि की गहनता उजागर की गयी है तो साथ ही प्रातः के दृश्य में हरे रंग के प्रयोग द्वारा हरियाली के बीच महल में नायक का नायिका के सामने बैठा होना चित्रित है। रात्रि के दृश्य में केलि-क्रीड़ा

प्रसंग को दिखाने के लिए नायक के साथ शैय्या पर स्त्री को भी दिखाया गया है। भंगिमाओं में एक ओर स्त्री की प्रसन्नचित्त मुद्राएँ हैं तो दूसरी ओर नायिका की आँखों में उरबसी को देखकर उपजी वेदना और क्रोध। इस प्रकार बिहारी द्वारा रचित यह शब्दों के माध्यम से चित्र निर्माण में जितना सफल है उतना ही चित्रकार द्वारा दोहे के माध्यम से मानस में बने चित्र को फलक पर उतारकर और अधिक प्रभावशाली बनाने के क्रम में इस चित्र की शैली तथा दृश्य अनुरूप रंगों के संयोजन से इसमें विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न हो गया है।

(5)

"पाइ महावर दैंन को नाइनि बैठी आइ।

फिरि फिरि, जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ।।"[21]

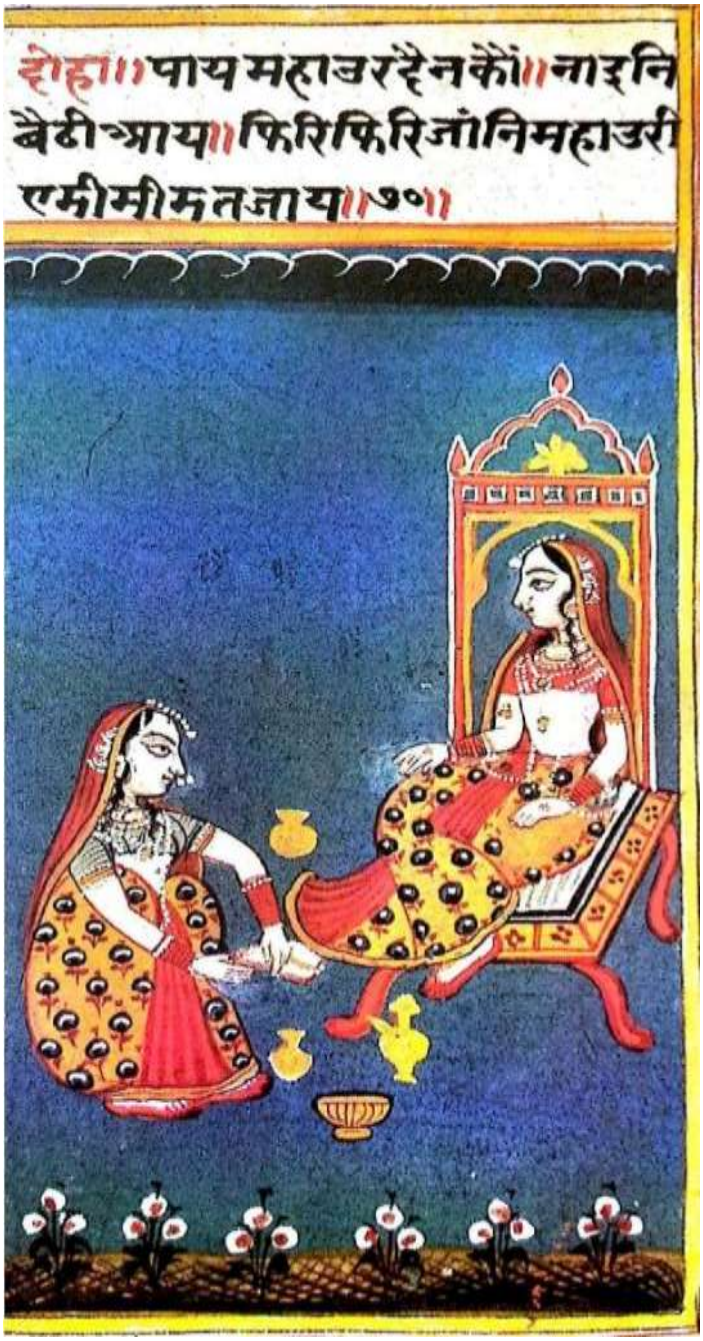

परिशिष्ट : चित्र - 15

नायिका की एड़ी की लालिमा की आपस में प्रशंसा करते हुए नाइन के कार्य पर सखियाँ परिहास करती हैं- (भावार्थ) पाँव में महावर लगाने के लिए नाइन आकर बैठी है और वह नायिका के बहुत अधिक लालिमायुक्त पाँव को देखकर महावर की गोली और पाँव की एड़ी में कुछ भेद ही नहीं कर पा रही। इसी भ्रम में वह एड़ी को ही महावर की गोली समझकर फिर-फिर मीड़ती अर्थात मरोड़े जा रही है।

बिहारी का उक्त दोहा नायिका की एड़ी की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा का है। इसके बावजूद भी इसमें चित्रांकन की संभावनाओं को बसोहली शैली के चित्रकारों ने खोजते हुए इस दोहे पर आधारित चित्रों को फलक पर उतारने का प्रयास किया है। बसोहली शैली के चित्र में नायिका को आसन पर बैठे हुए चित्रित किया गया है जिसके पैर को नाइन पकड़ कर बैठी है और एड़ी पर हाथ मसल रही है। पार्श्व में नीले रंग का अधिक प्रयोग कर इस चित्र में पीले, लाल रंग से हाशिये का निर्माण किया गया है। इसमें शैली चित्रों की प्रकृति अनुसार आकृतियों तथा रंगों के प्रयोग हुआ है। इस चित्र में नायिका और नाइन की मुद्रा तथा चेहरे के भाव उक्त दोहे अनुरूप ही हैं।

(6)

"कर के मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हलाइ।

सदा-समीपिनि सखिनु हूँ नीठि पिछानी जाइ।।"[22]

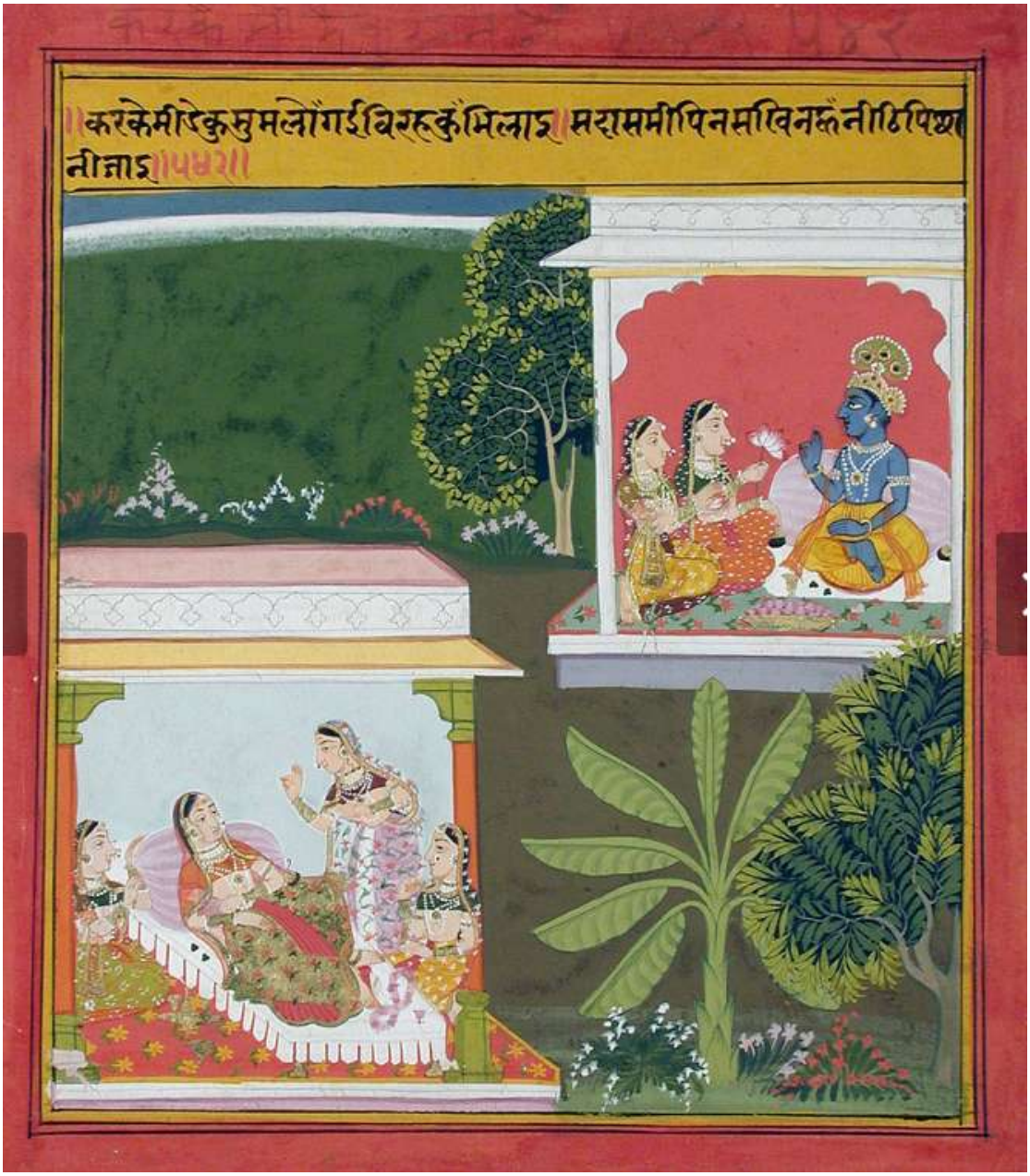

परिशिष्ट : चित्र - 16

नायिका की विरह में व्यथित दशा का वर्णन सखी नायक से करती है कि वह विरह में इस प्रकार से कुम्हिला गयी है, जिस प्रकार हाथों से मसला हुआ फूल। उस नायिका की विरह में यह दशा हो चली है कि नायिका के सदा समीप रहने वाली उसकी सखियाँ भी अब उसके विरह से कुम्हलाये शरीर के कारण उसको पहचानने में कठिनता महसूस करती हैं। इस चित्र में नायिका की भंगिमाएँ भी उसकी दशा के अनुसार शिथिल है जिससे उठना भी मुश्किल हो रहा है वहीं सखियों की चिंता इस बात से स्पष्ट है कि वह स्वयं नायक के पास जाकर उसकी सारी दशा कह देती हैं।

बिहारी का यह दोहा पढ़ते ही जो दृश्य उभरता है, वह एक बहुत ही कृशताजन्य नारी का जिसके पास कुछ सखियाँ बैठी हैं। नायिका विरह की ज्वाला में नित-नित दग्ध होकर कमजोर होती जा रही है। उसकी इसी विरहदशा का वर्णन नायिका की सखियाँ नायक से करती हैं।

इस दोहे पर मेवाड़ शैली में निर्मित एक चित्र अपने कक्ष में बिस्तर पर लेटी हुई क्षीणकाय नायिका तथा उसके पास बैठी और उसे समझाने का प्रयास करती कुछ सखियों का है। यह सभी स्त्रियाँ कमलनयनी हैं तथा परम्परागत आभूषणों और वस्त्रों को धारण किये हुए हैं। इस चित्र में चित्रित एक अन्य दृश्य वह भी है जिसमें नायिका की दो सखियाँ नायक रुपी कृष्ण के सामने नायिका की उस कुम्हिलाई अवस्था का वर्णन करते हुए चित्रित की गयी हैं जिसमें अब वह नायिका अपनी ही सखियों से बहुत मुश्किल से पहचानी जा रही है। मेवाड़ शैली के इन चित्रों की एक विशेषता यह भी है कि इसमें नायक नायिका को कृष्ण तथा राधा के रूप में चित्रित किया गया है, इन्हें परम्परागत वस्त्रों यथा- फूलों से चित्रित लहंगा-चोली, पारदर्शी चुन्नी आदि तथा आभूषणों, कंठाहार, बाजूबंद आदि से सुसज्जित किया गया है।

सभी चित्रों में नाक का आभूषण स्त्रियों के लिए विशेष है। क्षीणकाय नायिका का चित्रण अवस्थानुरूप किया गया है, तथा उक्त दोहे पर बने इस मेवाड़ शैली के चित्र के रंग संयोजन में चटकीले रंगों के प्रयोग की अधिकता है। लाल, पीला रंग इसके बॉर्डर अर्थात् बाहरी सजावट के लिए प्रयोग हुआ है और चित्र के भीतर हरे रंग का प्रयोग प्राकृतिक उपादानों को दिखाने के लिए अधिक हुआ है।

(7)

"कर-मुँदरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाइ।

पीठी दीयैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ।।"[23]

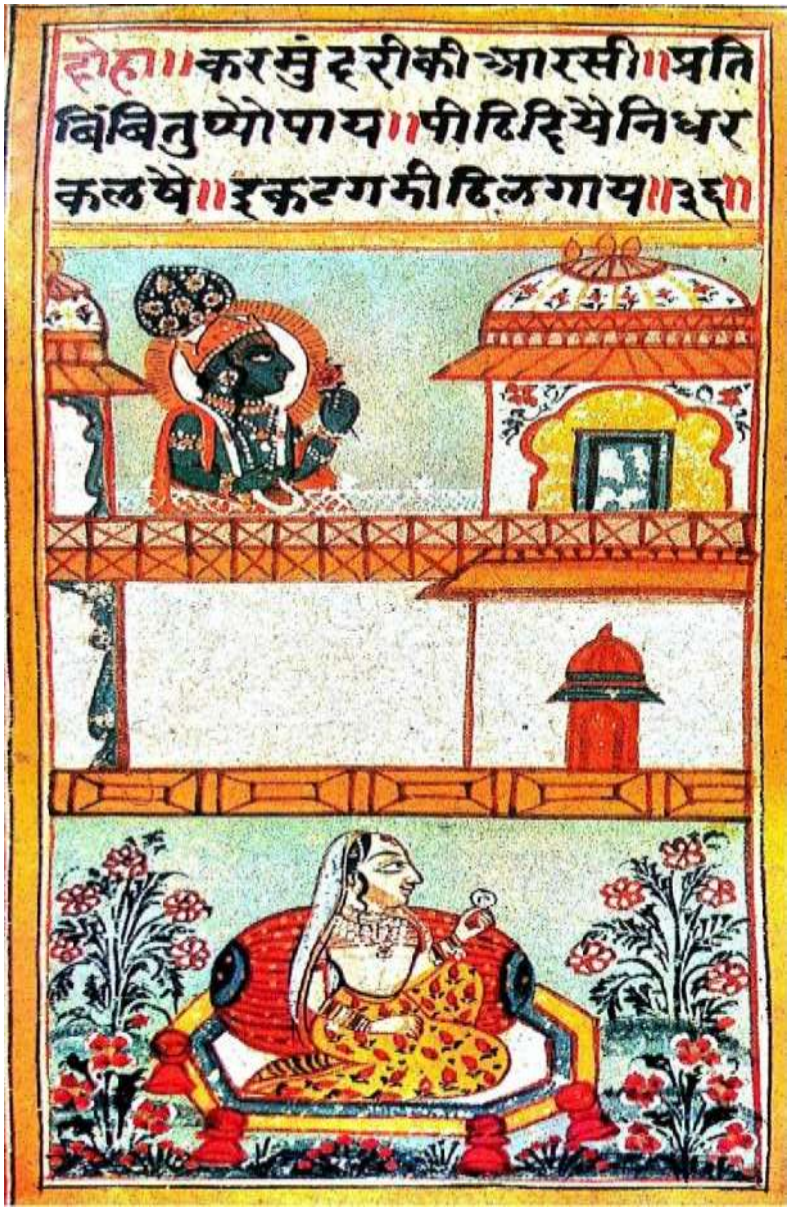

परिशिष्ट : चित्र - 17

कविवर बिहारी द्वारा यहाँ नायिका की चतुराई का वर्णन है जो लोकभय को ध्यान में रखते हुए अपने प्रियतम की छवि को निहारने का नया मार्ग निकल चुकी है। बिहारी बताते है कि नायिका अपने हाथ की अँगुठी के दर्पण सामान नग में प्रिय के प्रतिबिम्ब की छाया पाकर नायक की ओर पीठ दिए ही अपनी अँगूठी के दर्पण में अपने प्रियतम को लोक लाज की शंका से रहित होकर एकटक दृष्टि से देख रही है। नायिका राधा का यह चतुराई पूर्ण क्रियात्मक वर्णन लोकभय को भी दिखाता है और प्रेम में हर तरह के प्रयास से अपने प्रियतम को अपने पास लाने के भाव को भी वर्णित करता है। बिहारी ऐसे चातुर्य पूर्ण वर्णन तथा सामाजिक बन्धनों को दिखाने में भी पीछे नहीं रहे हैं। नायिका द्वारा नायक को हाथ की अँगूठी के नग रुपी दर्पण में देखती हुई तथा उस और पीठ दिए ही एकटक दृष्टि से देखते ही रहना प्रेमी युगल का चित्र आँखों के सामने ला देता है। इस दोहे पर बसोहली शैली में उत्तम चित्र बना है। इस चित्र में "आलेखनों से युक्त द्वार, जालीदार खिड़कियाँ, नक्काशीदार लकड़ी या पत्थर के स्तंभों से युक्त भवन"[24] का चित्रांकन हुआ है। नायक-नायिका रूपी कृष्ण-राधा ऐसे ही भवन में चित्रित हैं। नायक ऊपर की तरफ अपने भवन की अटारी पर खड़ा है और राधा अपने भवन के आँगन में बैठ कर हाथ की अँगूठी लेकर श्रीकृष्ण को उसमे नित टकटकी लगाकर निहार रही है। राधा की मुद्रा उस फूलों से सुसज्जित बाग में हाथ में मुंदरी लेकर बहुत ही सुंदर तथा मनोहारी लग रही है। चित्र की रंगयोजना में हाशिये पर पीले रंग का प्रयोग हुआ है तथा पार्श्व में केसरिया, पीला तथा नीले रंगों का प्रयोग है। पीला रंग बसोहली शैली में बसंत का भी प्रतीक माना जाता है।

(8)

"कर समेट कच भुज उलटि, खऐं सीस-पटु टारी।

काकौ मनु बाँधै न यह जूरा बाँधनहारि।।"[25]

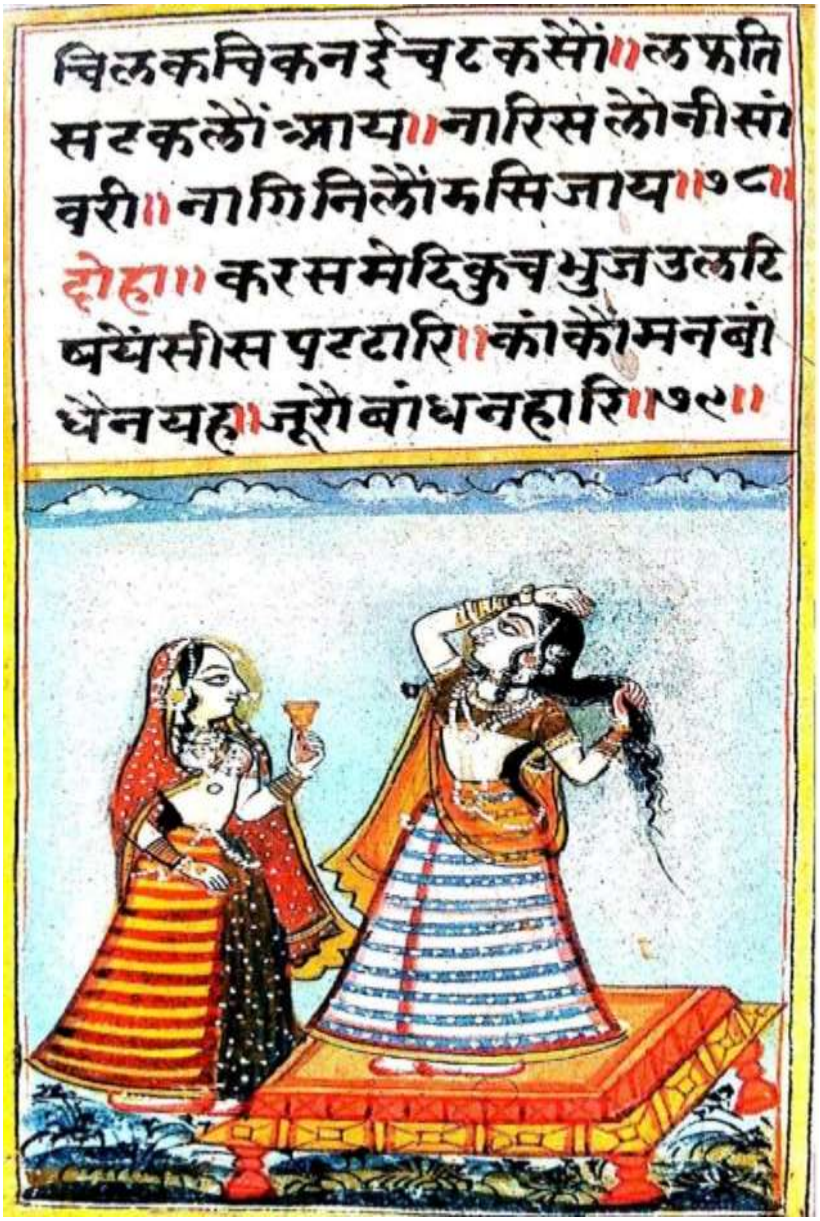

परिशिष्ट : चित्र - 18

इस दोहे में नायिका के जूड़ा बांधते समय की मनोहारिणी चेष्टाओं को देखकर नायक स्वगत कहता है- यह पीछे की ओर उल्टे हाथों से बालों को समेटकर भुजमूलों पर सर का वस्त्र हटाकर यह जूड़ा बाँधने का प्रयास करने वाली नायिका किसका मन अपने इस जूड़े के साथ नहीं बाँध रही है अर्थात् इसका यह चेष्टागत प्रयास सभी को अपने पर आसक्त कर ले रहा है। बिहारी द्वारा रचित इस दोहे में नायिका द्वारा जूड़ा बाँधने की चेष्टाओं का वर्णन शब्दों के माध्यम से दृश्यचित्र निर्मित कर देता है। इसी दृश्यचित्र को रंगों से फलक पर उतारने का सफल प्रयास बसोहली शैली के एक चित्रकार ने किया है। इस चित्र में नायिका को उसी मुद्रा में अंकित किया गया है जो कवि बिहारी ने वर्णित की है। उस स्त्री की जूड़ा बाँधने की चेष्टाओं में हाथों को समेटकर, अपने भुजाओं पर शीश के पट को डालकर अपने हाथों से बालों को पकड़कर जूड़ा बाँधने का प्रयास कर रही है। इस नायिका के पास एक अन्य सखी भी है जो उसकी यह चेष्टायें देख रही है। नायिका की ये हृदयगत चेष्टायें जूड़ा बाँधने के क्रम में हर किसी को स्वयं पर आसक्त कर उसके हृदय को भी बाँधने में सफल हो सकती हैं। बिहारी के अन्य दोहे का भी इस चित्र में लिपि अंकन हुआ है पर उसका चित्र से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। परम्परागत वेशभूषा, आभूषण, केशसज्जा के साथ शैली अनुरूप प्रभावशाली रंगयोजना का प्रयोग इस चित्र में हुआ है जो बिहारी के उक्त दोहे को चरितार्थ कर देता है।

(9)

"हरि कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।

जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यो परयौ रहौं दरबार।।"[26]

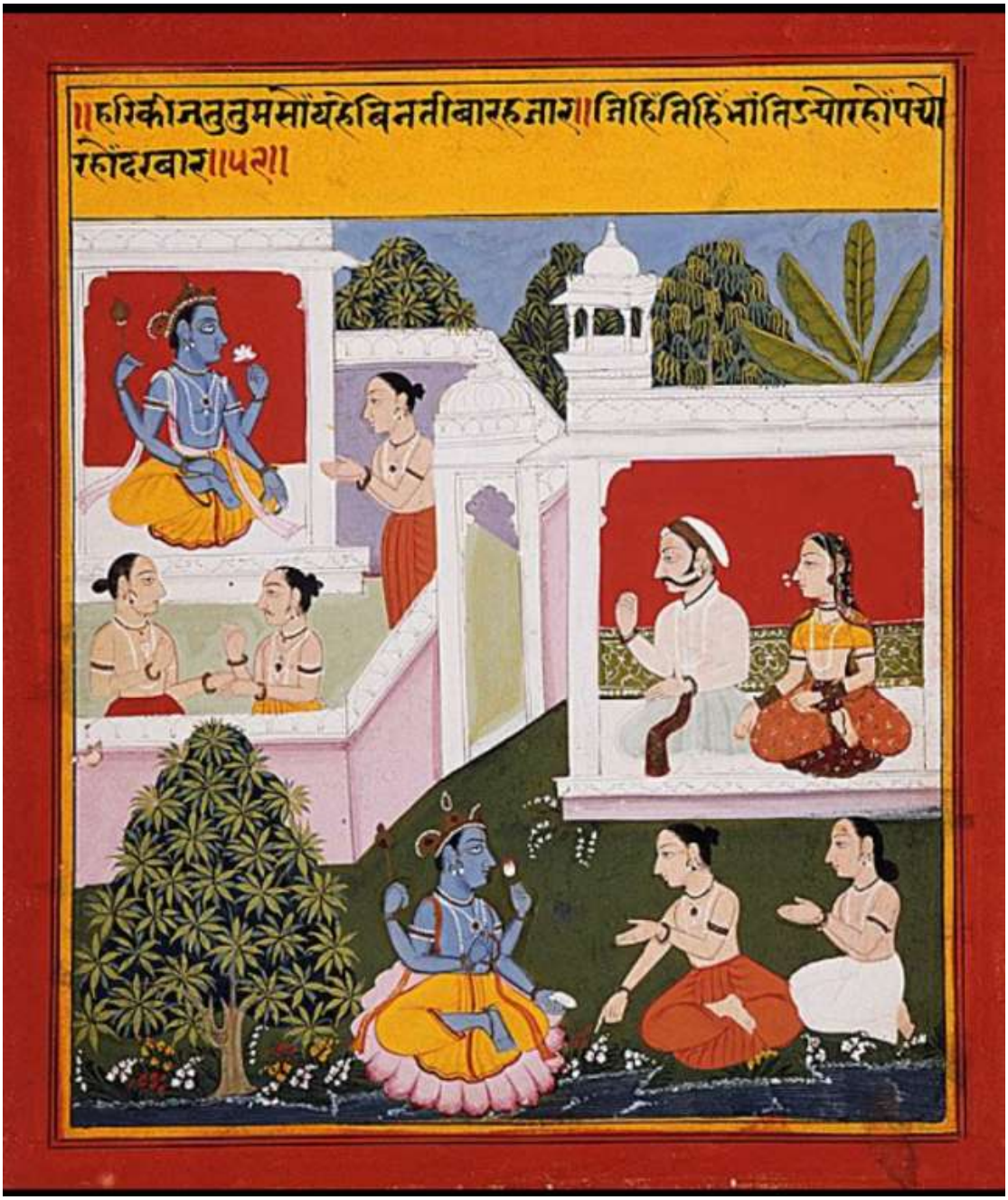

परिशिष्ट : चित्र - 19

भक्ति मार्ग के अनुयायी वैष्णव भक्ति में मुक्ति की कामना कभी नहीं चाहते क्योंकि उनका मनना है कि मुक्ति में कुछ नहीं रखा होता है, जो कुछ है वह तो युगल स्वरुप के सेवा तथा दर्शन भाव में है। सेवा भाव का यह आनंद मुक्ति हो जाने पर प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए इसी सेवा तथा दर्शन सुख के अभिलाषी भक्त की प्रभु से प्रार्थना है- हे हरि, मेरी तुमसे हजार बार बस यही नम्रता पूर्वक विनती है कि अच्छी-बुरी अब जैसी भी दशा हो मेरी, पर मैं आपके दरबार में ही पड़े रहना चाहता हूँ। अर्थात् जिस भी दशा में मुझे रहना हो मैं रह लूँगा पर मैं आपके दरबार से मुक्ति नहीं चाहता, बल्कि आपकी सेवा में ही इस दरबार में लगा रहना चाहता हूँ।

बिहारी द्वारा रचित यह दोहा अभिलाषा से परिपूर्ण है जिसमें भक्त की प्रभु से मुक्ति की कामना से परे उनके ही सेवा में जीवन देने की इच्छा को व्यक्त किया गया है। इस भाव-भक्तिपूर्ण दोहे का राजस्थानी कला की मेवाड़ शैली में चित्रांकन हुआ है। जिसमें भक्त को हरि के सामने हाथ जोड़ कर खड़े इस प्रकार से चित्रित किया गया है कि इस चित्र में दोहे के ये भाव स्वतः ही मस्तिष्क में अपना प्रभाव छोड़ने लगते हैं। रंग-संयोजन में विशेषत: लाल, पीले और नीले रंग के प्रयोग ने भाव को अधिक प्रभावी बना दिया है। चित्र में भक्ति-भाव का पूर्ण संयोजन रंगों तथा चित्रित मानवाकृतियों से हो गया है, इसमें बिहारी के काव्य में उपस्थित शब्दों में चित्रांकन करने की क्षमता का भी प्रमाण मिलता है।

(10)

"कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ।

जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ- दाघ-निदाघ।।"[27]

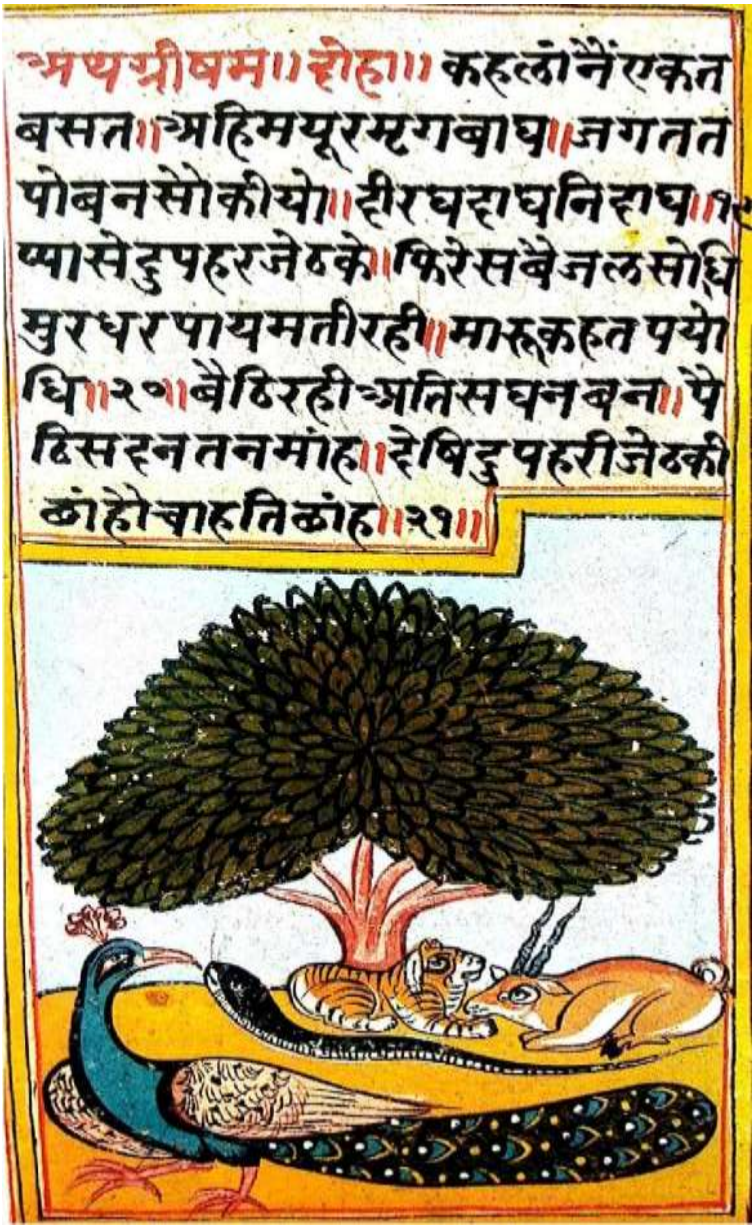

परिशिष्ट : चित्र - 20

यह दोहा विपत्ति के समय बैर-भाव भूलकर एक-साथ रहने का भी भाव प्रेषित करता है। वन के जीवों का परस्पर बैर-भाव भूलकर गर्मी के भीषण और प्रचंड ताप से कातर होकर, एकत्र रहना बिहारी वर्णित करते हैं कि - वन में अहि अर्थात् सर्प, मोर, हिरन तथा बाघ गर्मी से बेहाल और व्याकुल होकर एक साथ एकत्र होकर बस गये हैं। इस प्रचंड ताप वाली ग्रीष्म ऋतु ने तो वन जगत को भी तपस्वियों के वन जैसा बना दिया है, जहाँ मोर और बाघ को यह ध्यान ही नहीं कि सर्प और हिरन हमारे आहार हैं और न ही सांप और मृग में ही उनसे स्वयं को बचाने की शक्ति बाकी है। इस भीषण गर्मी ने तो शत्रुओं को भी एक ही जगह पर बसने के लिए मजबूर कर दिया है। ऐसे ही एक चित्र इस दोहे पर डॉ. श्यामसुंदर दुबे की पुस्तक बिहारी सतसई से मिला है जिसकी शैली अज्ञात है परन्तु देखने से रंगयोजना के कारण यह बसोहली शैली का प्रतीत होता है। इस चित्र में मोर, बाघ, हिरन तथा सांप चारों एक ही वन में एक साथ चित्रित किये गये हैं। इस चित्र में पेड़ के आस-पास इन चारों का इकट्ठा होना ग्रीष्म ऋतु की ओर संकेत करता है। बिहारी के उक्त दोहे में गर्मी की प्रचंडता को भी बहुत ही उत्तम रूप में इस चित्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। रंगों का उचित संयोजन इस चित्र में दृष्टव्य है जिससे यह तो स्पष्ट है कि बिहारी के काव्य में चित्रांकन की संभावनाएँ शब्दों तक ही सीमित न होकर रंगों तक भी विस्तृत हैं।

(11)

"सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोबन-जोति।

सुरँग, कसुँभी कंचुकी दुरँग देह - दुति होति।।"[28]

परिशिष्ट : चित्र – 21

नायिका की सखी नायिका के शरीर में यौवन की स्वर्ण शोभा का वर्णन करती है कि- उसके अंग-अंग में यौवन की चमक पीले रंग वाली जूही के समान जगमगा रही है। नायिका के इस यौवन का सौन्दर्य इतना है कि उसके कुसुम के फूल से रंगी सुंदर कंचुकी भी नायिका के शरीर की सुनहरी आभा से दुरंगी अर्थात् रक्त और पीत की आभाओं से मिश्रित हो गयी है यहाँ नायिका के यौवन का वर्णन अधिकता लिए है।

बिहारी के उक्त दोहे पर मेवाड़ शैली के चित्र में सखी को कृष्ण के पास बैठे दिखाया गया है जिसमें सखी की मुद्रा उसके कुछ कहने की भंगिमा को सूचित कर रही है। चित्र के ही दूसरे दृश्य में नायिका का उसकी सखियों के साथ बैठे हुए चित्रांकन हुआ है जिससे इन दोनों दृश्यों का एक चित्र में संयोजन होने से बिहारी का यह दोहा इस चित्र में भावानुरूप चरितार्थ हुआ है। चित्र में नायिका के साथ उसकी सखियों की मुद्राएँ नायिका की ओर प्रशंसात्मक हैं तथा चित्र की रंग-योजना मेवाड़ के अन्य चित्रों के समान ही सुंदर है और बिहारी के शब्दचित्रांकन को रंगचित्रांकन में ढाले हुए सुंदर बनी है।

(12)

"खरी लसति गोरैं गरैं, धँसती पान की पीक।

मनौ गुलिबँद-लाल की, लाल, लाल दुति-लीक।।"[29]

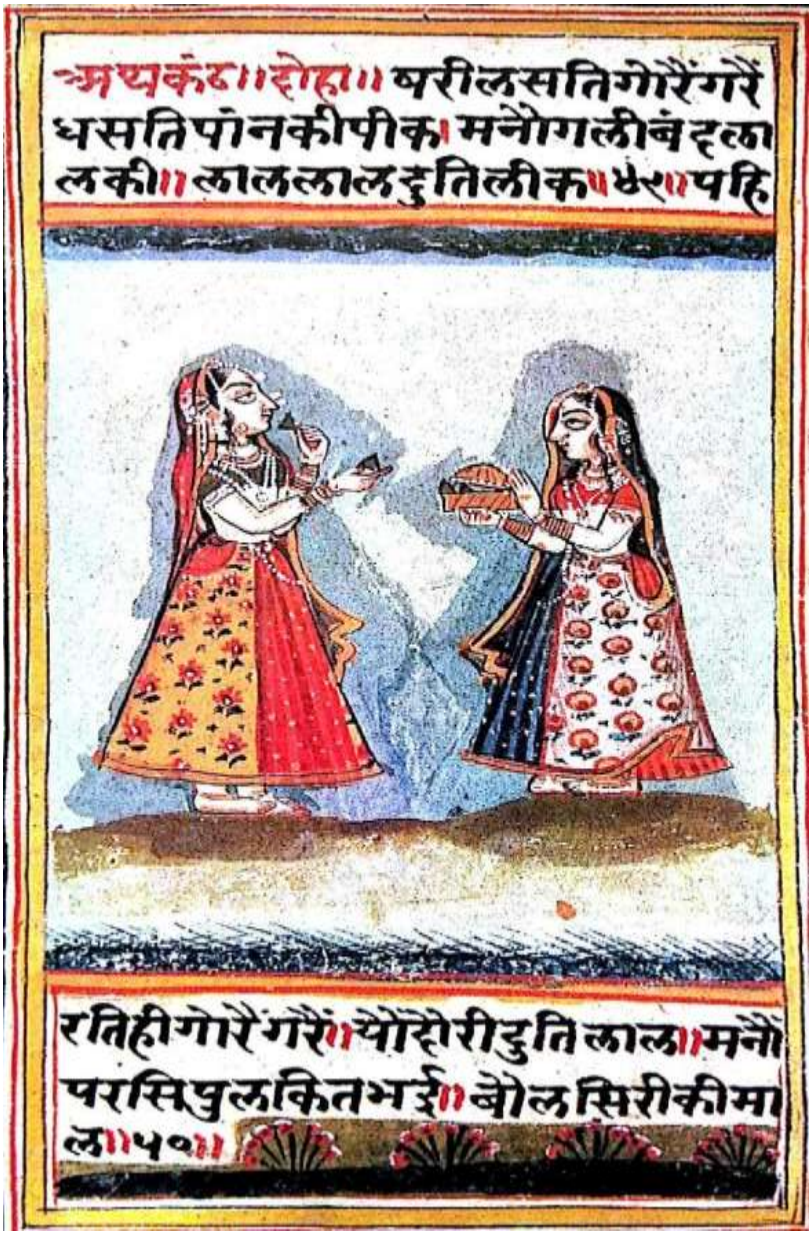

परिशिष्ट : चित्र - 22

बिहारी द्वारा रचित यह दोहा नायिका की सखी द्वारा नायक के समक्ष नायिका की गुराई और अमलता की प्रशंसा कर नायक की रुचि बढ़ाने का भाव प्रदर्शित करता है। सखी नायक से कहती है कि, हे लाल उस नायिका का गौर वर्ण तो इतना अधिक है कि पान खाते समय गले में नीचे उतरती हुई पान की पीक भी उसकी गौर, विमल तथा पतली त्वचा में से झलककर अति शोभा देती है। यह देखकर ऐसा लगता है मानो गले में पहनने वाले आभूषण गुलबंद के लाल माणिक्य की लाल रेखा हो। नायिका का ऐसा गौर वर्ण आश्चर्य में डाल देता है, परन्तु बिहारी के यहाँ होने वाले कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में से एक यह दोहा भी है। बिहारी की नायिका ही 'इत आवत चली जात उत, चली छः सातक हाथ, चढ़ी हिंडोरे सी रही लगी उसांसन साथ' जैसी हो सकती है।

यहाँ भी नायिका ऐसी ही विशिष्ट है जो कि बसोहली शैली के एक चित्र में भीं चित्रकार द्वारा चित्रित की गयी है। इस चित्र में एक नायिका है जो पान हाथ में लिए खाने की मुद्रा में है तथा उसके गले में पान की पीक की लाली चित्रकार द्वारा बहुत बारीकी से चित्रित की गयी है। नायिका के साथ एक सखी भी है जो हाथ में पान का बक्सा लिए खड़ा है। पान खाने की मुद्रा में लाल ओढ़नी तथा पीले रंग के लहंगे के साथ कोमलांगी नायिका बिहारी की नायिका का प्रतिबिम्ब लगती है। इसी चित्र में नायिका को गले में एक माला धारण किये हुये चित्रित किया गया है जिसके आधार पर चित्रकार ने बिहारी द्वारा रचित एक अन्य दोहे का भी भाव समावेश करने का प्रयास इस चित्र में किया अवश्य है जिसका भावार्थ यह है कि वह नायिका नायक द्वारा भेजी गयी माला को गले में धारण करते ही माला पर नायक के हुए स्पर्श के कारण उसमें सात्विकता उत्पन्न हो गयी। इस सात्विकता में नायिका की आभा में द्युति के दौड़ने से वह स्वयं ही मौलसिरी की माला जैसी हुई जा रही है। परंतु इस चित्र में भी इस दोहे का भाव समावेश चित्र से पूर्ण रूप से संबंधित नहीं प्रतीत होता। पीले रंग के हाशिये के चित्र

में नीले तथा लाल रंग का सफ़ेद रंग के साथ मिश्रण रंग संयोजन को प्रभावशाली बना रहा है। बिहारी के दोहे पर बनने वाले चित्रों में से एक यह चित्र भी बिहारी की चित्रांकन क्षमता का प्रमाण है।

(13)

"सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।

इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल।।"[30]

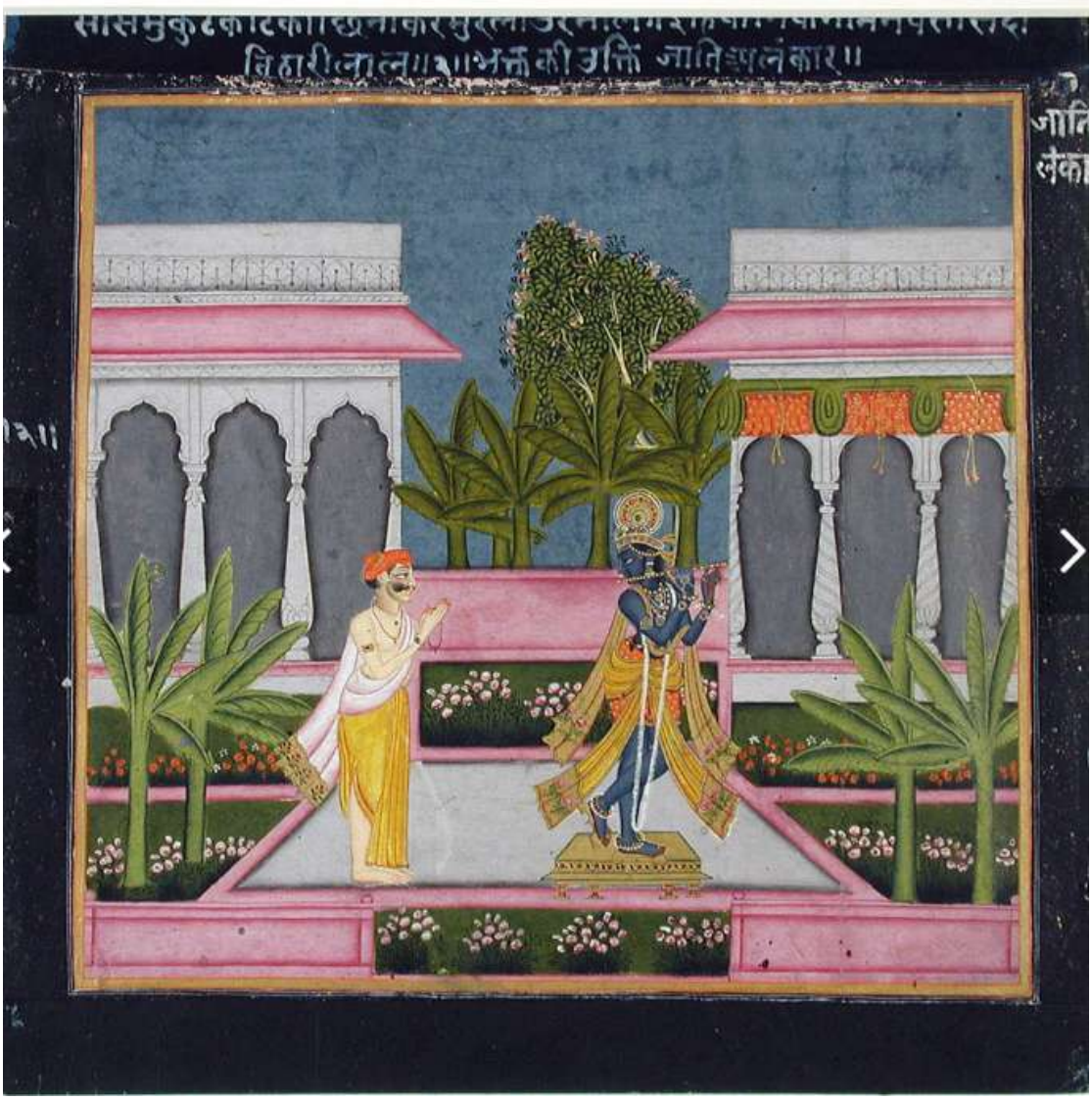

परिशिष्ट : चित्र -23

इस दोहे में कवि बिहारी द्वारा श्रीकृष्ण से अपने ह्रदय में सदा गोपाल रूप में बसे रहने की प्रार्थना की गयी है। बिहारी को कृष्ण के द्वारिकाधीश रूप से कोई प्रयोजन नहीं है, वे तो कृष्ण के गोप वेष के उपासक हैं। तभी बिहारी कृष्ण को उस गोप रूप में ही अपने ह्रदय में बसने की प्रार्थना करते हुए कहते है कि, हे कृष्ण, आनंद क्रीड़ा करने वाले बिहारी लाल, आप मेरे ह्रदय में ऐसे रूप में बसियें जिसमें आपके शीश पर मुकुट, कमर पर काछनी अर्थात् करधनी, हाथ में मुरली तथा गले में वनमाला सुशोभित हो। अर्थात् मैं तो आपके वैजंती माल से परे आपके वनमाला को धारण किये हुए गोप वेश का उपासक हूँ और उसी रूप में आपको अपने ह्रदय में बसाये रखना चाहता हूँ। अतः आप मेरे ह्रदय में अपने इसी गोपाल रूप में सदा बने रहें।

इस दोहे का एक अन्य अर्थ दूधनाथ सिंह जी भी करते हैं, " बिहारी लाल एक ओर तो कवि का नाम है, दूसरी ओर श्रृंगारपरक अर्थ में नायिका कहती है कि हे लाल! (लाल शब्द के तीन अर्थ हैं- पहला प्रिय, दूसरा लाल रत्न की भाँती बहुमूल्य, तीसरा अनुराग से भरे) तुम बिहारी हो, विहार करने वाले हो, एक स्थान पर कभी रुकते नहीं हो, इधर-उधर क्रीड़ा करते फिरते हो, सो अपना यह बिहारीपन छोड़ दो अन्यथा बदनाम हो जाओगे, यदि विहार करना ही है तो मेरे मन में ही विहार करो। इससे तुम्हे भी सुख मिलेगा और निन्दा से भी बच जाओगे।"[31]

बिहारी द्वारा अपनी प्रार्थना में कृष्ण का जो गोपाल रूप उकेरा गया है। वह रंगों के माध्यम से दर्शनीय बन गया है। भक्ति- भाव का यह सुंदर चित्रण भावाभिव्यन्जना के साथ एक म्यूजियम से प्राप्त चित्र में मिलता है। इस चित्र में काले रंग के बॉर्डर के भीतर पूरा दृश्य चित्रित है। जिसमें कवि बिहारी को शीश पर मुकुट, कमर में करधनी तथा हाथों में मुरली के साथ गले

में माला धारण किये श्रीकृष्ण के गोपाल रूप से प्रार्थना करते हुए चित्रित किया गया है। इस चित्र में कवि बिहारी तथा श्रीकृष्ण दोनों की ही मुद्राएँ सुघड़ हैं। बिहारी कृष्ण के समक्ष हाथ जोड़कर विनती की मुद्रा में खड़े हैं जबकि श्रीकृष्ण मुरली बजाने की मुद्रा में चित्रित हैं। चित्र में आस-पास का परिवेश गुलाबी और सफ़ेद रंग से महल के आँगन को सजाया गया है तथा केले के वृक्षों का भी इसमें चित्रण हुआ है। यह चित्र बिहारी के उस पक्ष को उजागर करता है जो कवि बिहारी की चित्रांकन क्षमता को सशंकित समझते हैं।

(14)

"जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक।

मनौ अली चंपक-कली बसि रसु लेतु निसाँक।।"[32]

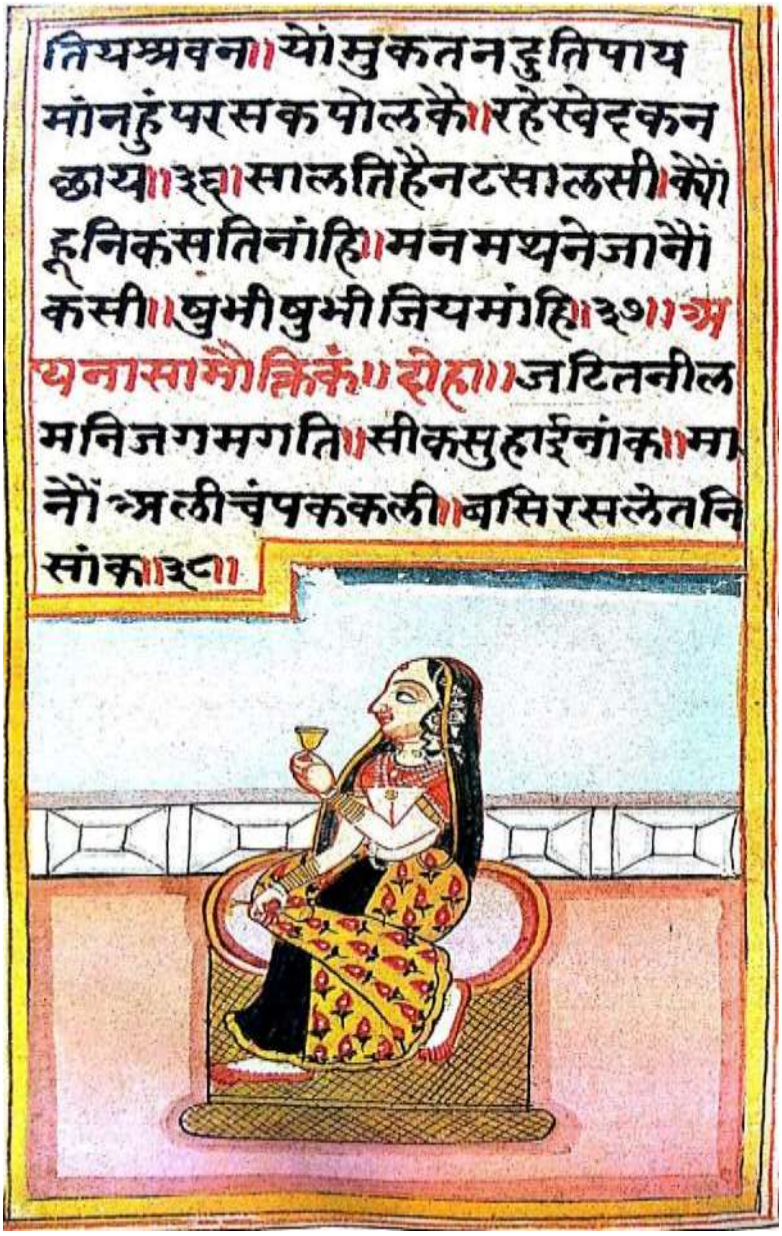

परिशिष्ट : चित्र - 24

यह कथन नायक का स्वगत है जो नायिका के नाक तथा उसमें डली हुई नीलम जड़ी सींक की अपूर्व शोभा का वर्णन कर रहा है। वह विचार करता है कि नायिका की सुंदर सी नाक में नीलम से जड़ी हुई सींक ऐसी जगमगा रही है मानो भँवरा चंपे की कली पर बैठकर निशंक भाव से उसका रस ले रहा हो। भ्रमर उस नासा रुपी चंपे की मनोहर कली पर विचार शून्य होकर ऐसा मुग्ध हो गया है जिसमें वह यह भूल ही गया है कि भ्रमर चंपे की कली पर नहीं बैठता। यह कथन एक ओर जहाँ नायिका की नासिका की चित्ताकर्षक नाक तथा उसमे डली हुई सींक की अपूर्व शोभा का वर्णन है वहीं दूसरी ओर यह शोभा विलक्षण होते हुए भी सामान्य नियम को भुलावा देने वाली है। इस विलक्षण शोभा का चित्रण बसोहली शैली के चित्र में एक चित्रकार ने चित्रांकित किया है। इस चित्र में नायिका एक आसन पर हाथ में रस का पात्र लिए विराजमान है। उसकी मुद्रा आसन पर बैठकर ऐसी है कि उसके नाक में सुहाई नीलमणि रत्न जड़ित सींक भी दिखाई दे रही है। इसी सींक के पीछे के भाव को व्याख्यायित करते हुए इस चित्र में ही बिहारी का उक्त दोहा नागरी लिपि में अंकित है जिससे यह तो स्पष्ट ही है कि उक्त चित्र का आधार बिहारी का यह दोहा है, साथ ही साथ इस सामान्य से चित्र में नायिका का सौन्दर्य तथा चित्र की रंग-योजना इस चित्र को विशेष बनाती है। लाल और पीले रंग का मुख्यतः इस चित्र में प्रयोग दृष्टव्य हुआ है।

(15)

"सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसति नाँहि।

मनमथ-नेजा-नोक सी खुभी खुभी जिय माँहि।।"[33]

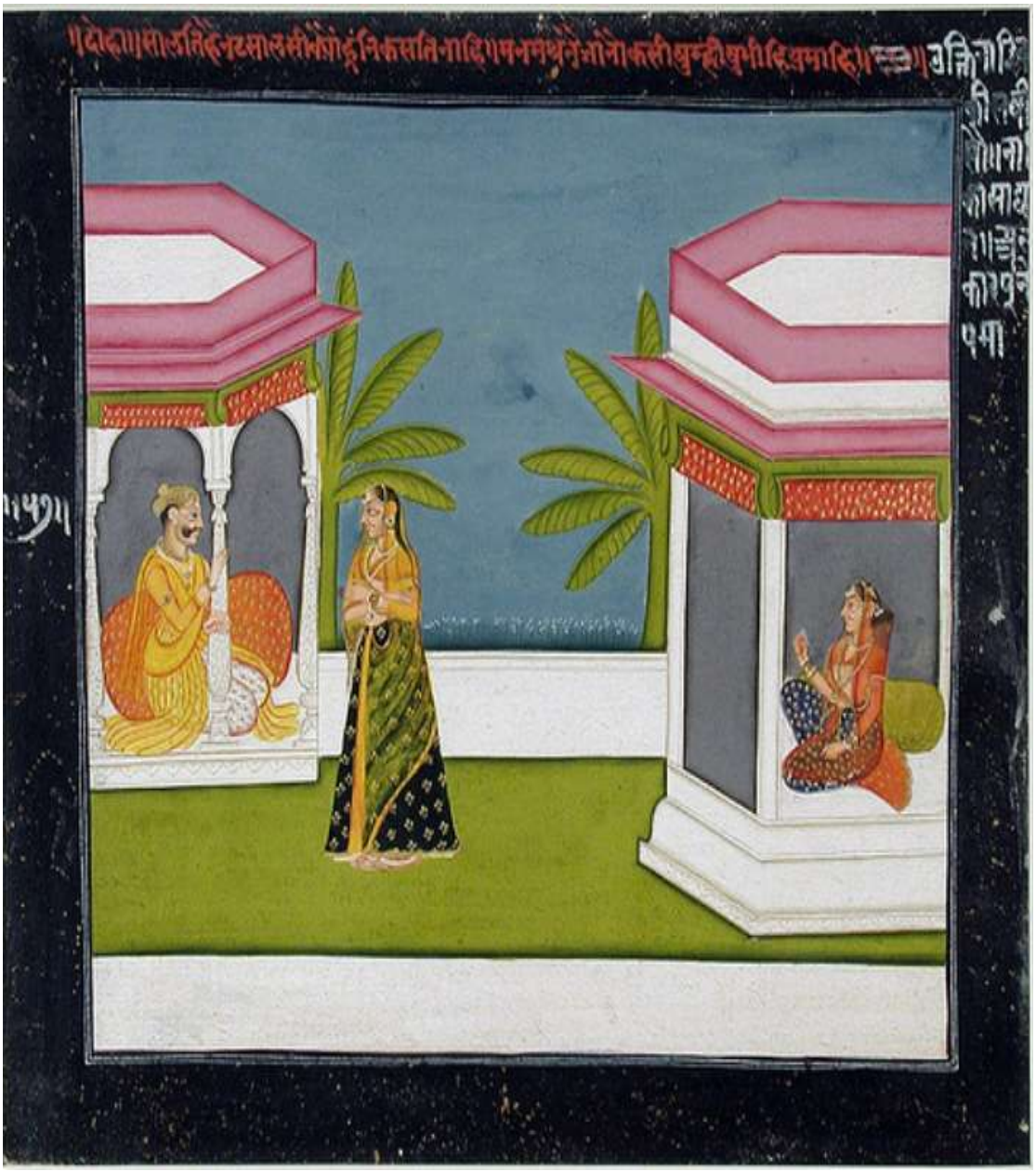

परिशिष्ट : चित्र - 25

बिहारी द्वारा रचित यह दोहा मिलनोत्कंठा के भाव को अपने भीतर समाये हुए है। इस दोहे में नायक अपने ऊपर हुए नायिका के कर्ण आभूषण के प्रभाव को नायिका की सखी को बताता है कि, उसका कामदेव की भाले की नोंक के समान कान का आभूषण मेरे ह्रदय में इस प्रकार से चुभा हुआ है कि वह दिन-रात चुभकर मुझे पीड़ा ही देता है और किसी भी प्रयास से बाहर नहीं निकलता। अर्थात् नायिका के कर्ण-आभूषण मात्र से ही नायक पर प्रेम रुपी बाण इस प्रकार से उसके ह्रदय में धंसा है कि वह न तो किसी भी व्याज से नायिका के प्रेम से बाहर ही निकल पता है बल्कि यह प्रेम दिन-रात उसकी याद दिलाकर नायक के ह्रदय को पीड़ा ही पहुँचाता है।

इस दोहे के भाव पर निर्मित एक चित्र भी प्राप्त हुआ है जिसमें नायिका ने विविध आभूषण के साथ कर्ण-आभूषण भी धारण किया हुआ है। नायिका नायक के सामने से निकल रही है जिसे नायक ने देखा है और उसके कर्ण-आभूषण को देखकर नायक नायिका के उस कर्ण-आभूषण धारित मुख की छवि से निकले प्रेम रुपी बाण से ही घायल हो गया है। यह घायल होना प्रेम का ह्रदय में उठ जाना है जो नायिका के कर्ण-आभूषण के प्रभाव से नायक के मन में उपजा है। इसलिए यह ना तो नायिका की सूरत मन से ही निकाल पा रहा है और न ही उससे मिल ही सकता है। नायिका के मार्ग से गुजरने के बाद उसकी सखी से नायक यह भाव व्यक्त करते हुए भी इस चित्र में चित्रित हुआ है जिसमें इन पात्रों की प्रेम जनित चेष्टायें आकर्षक और सादगी संपन्न हैं।

(16)

"सहज सचिक्कन, स्याम-रुचि, सुचि, सुगंध, सुकुमार।

गनतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुरे सुथरे बार।।"[34]

परिशिष्ट : चित्र - 26

बिहारी के उक्त दोहे में नायिका के बालों पर रीझकर और अपने दैनिक कर्म को भूलकर उन्हीं बालों के ध्यान में नायिका से मिलन की आकांक्षा में मग्न नायक का चित्रण है। जिसे उसके किसी अन्य मित्र द्वारा लोक-लाज और सही-गलत के मार्ग के भेद को समझाये जाने पर नायक उसे उत्तर देता है कि- नायिका के स्वाभाविक और प्राकृतिक रूप से ही चिकने, काले, अमल तथा मनोहर सुगंध वाले कोमल, फैले हुए सुंदर बालों को देखकर मेरा मन इस प्रकार से उस स्त्री पर मोहित हो गया है कि वह अब सही-गलत मार्ग, पथ-अपथ कुछ भी विचार नहीं कर पाता।

यह दोहा बालों के सौन्दर्य को व्यक्त करने वाला है जिसमें स्वाभाविक रूप से चिकने, काले, अमल तथा मनोहर सुगंध वाले फैले कोमल बाल किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। ऐसा ही आकर्षण बसोहली शैली के एक चित्र में देखकर उत्पन्न होता है जिसमें शैली अनुरूप स्त्री को "सूथन चोली और ऊपर से पेशबाज या ढीला लम्बा घेरदार चोंगा पहने दिखाया गया है"[35] कोमलांगी के हाथ में वीणा तथा साथ में हिरन भी चित्रित किया गया है। इस चित्र में बाल अधिक आकर्षक अवश्य चित्रित हुए हैं परन्तु दर्शनीय कम हैं। शैली की विशेषता के अनुसार क्षितिज को एक पतली नीली पट्टी पर सफ़ेद वक्राकर लाइनों द्वारा बादलों को दिखाया गया है। इस चित्र में इस दोहे की भाव-व्यंजना की पहचान इस चित्र पर अंकित बिहारी का उक्त दोहा ही है जो कि बिहारी सतसई पर बनने वाले चित्रों में से एक है। रंग संयोजन में पीले रंग से हाशिये को, काले रंग से भूमि परछाँही की तरह तथा उस पर पौधों को चित्रित किया गया है।

(17)

"ले चुभकी चलि जाति जित जित जल-केलि-अधीर।

कीजत केसरि - नीर से तित तित के सरि-नीर।।"[36]

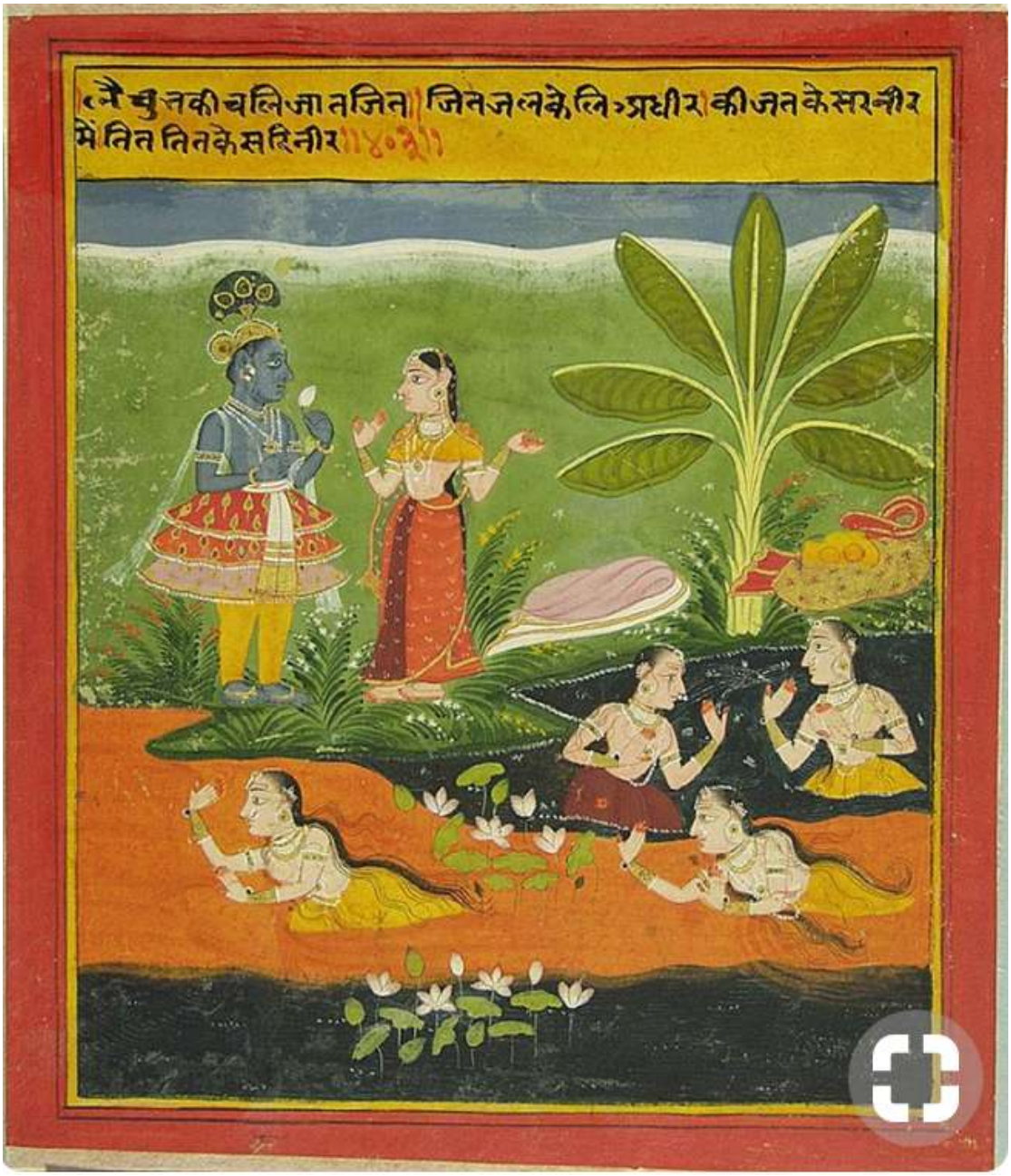

परिशिष्ट : चित्र - 27

बिहारी का यह दोहा रंग-संयोजन का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस दोहे में नायिका के गौरे वर्ण की पीत द्युति का वर्णन सखी नायक से करती है और बताती है कि वह नायिका तो ऐसे स्वर्ण के समान गोरे वर्ण वाली है कि जब नदी के जल में केलि करती वह जिस दिशा में भी डुबकी लेकर जाती है, उस ओर से नदी का जल भी उसकी पीत द्युति की आभा से मिलकर केसर घोले हुए जल के समान अर्थात् केसरिया रंग का हो जाता है। कवि बिहारी द्वारा रचित इस दोहे में नायिका के पीत वर्ण की अधिकता है, परन्तु रंग-संयोजन का ज्ञान बिहारी को अवश्य था। डॉ. नगेन्द्र ने बिहारी के रंगों के सूक्ष्म परिज्ञान को देव से तुलना करते हुए लिखा है, "बिहारी और देव दोनों ने अपने चित्रों में वर्ण योजना का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। कहीं छाया प्रकाश के मिश्रण द्वारा चित्र में चमक उत्पन्न की गई है, कहीं उपयुक्त पृष्ठभूमि देते हुए एक ही रंग को काफ़ी चटकीला कर दिया गया है, और कहीं अनेक प्रकार के रंगों को सूक्ष्म कौशल से मिलाते हुए उसमें सतरंगी आभा उत्पन्न की गयी है।"[37]

इसी भाव से मेवाड़ शैली में उकेरा गया एक चित्र प्राप्य है जिसमें दो दृश्यों के चित्रण द्वारा इस पूरे दोहे को भाव सहित चित्रांकित किया गया है। यह एक चित्र दोहे के समान एक पूरी घटना को कुछ विशिष्ट रंगों से व्यक्त कर रहा है। इस चित्र में कुछ छरहरी तथा सुंदर से मुख वाली, लम्बी उँगलियों तथा आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियों को चित्रित किया है जिनमें एक स्त्री को कृष्ण से कुछ कहते दिखाया गया है। एक स्थान पर नदी में स्नान करती कुछ युवतियों से नदी का आधा जल तो अपने वास्तविक रंग में है, परन्तु नायिका के स्नान तथा केलि के स्थान पर नदी का रंग केसरिया चित्रित किया गया है, इससे स्पष्ट ही इस पूरे दोहे का अर्थ हो जाता है कि राधा की सखी कृष्ण को बता रही है, राधा का गौर वर्ण स्वर्णमयी है जिससे नदी में नहाते समय उसके इस स्वर्णमयी रंग के प्रभाव से नीला रंग भी केसरिया हो जाता है। इस चित्र को देखने पर तथा बिहारी के दोहे से इसके भाव-साम्य के कारण बिहारी के

काव्य की चित्रांकन क्षमता स्वत: स्पष्ट हो जाती है। बिहारी के शब्द चित्रांकन का भाव लेकर चित्रकार ने अपनी कल्पना में लाल, पीले, हरे अलग-अलग रंग की कूचियों से इस चित्र को सजीव कर दिया है।

(18)

"लई सौंह सी सुनन की, तजि मुरली, धुनि आन।

किए रहति नित रातिदिनु कानन-लागे कान।।"[38]

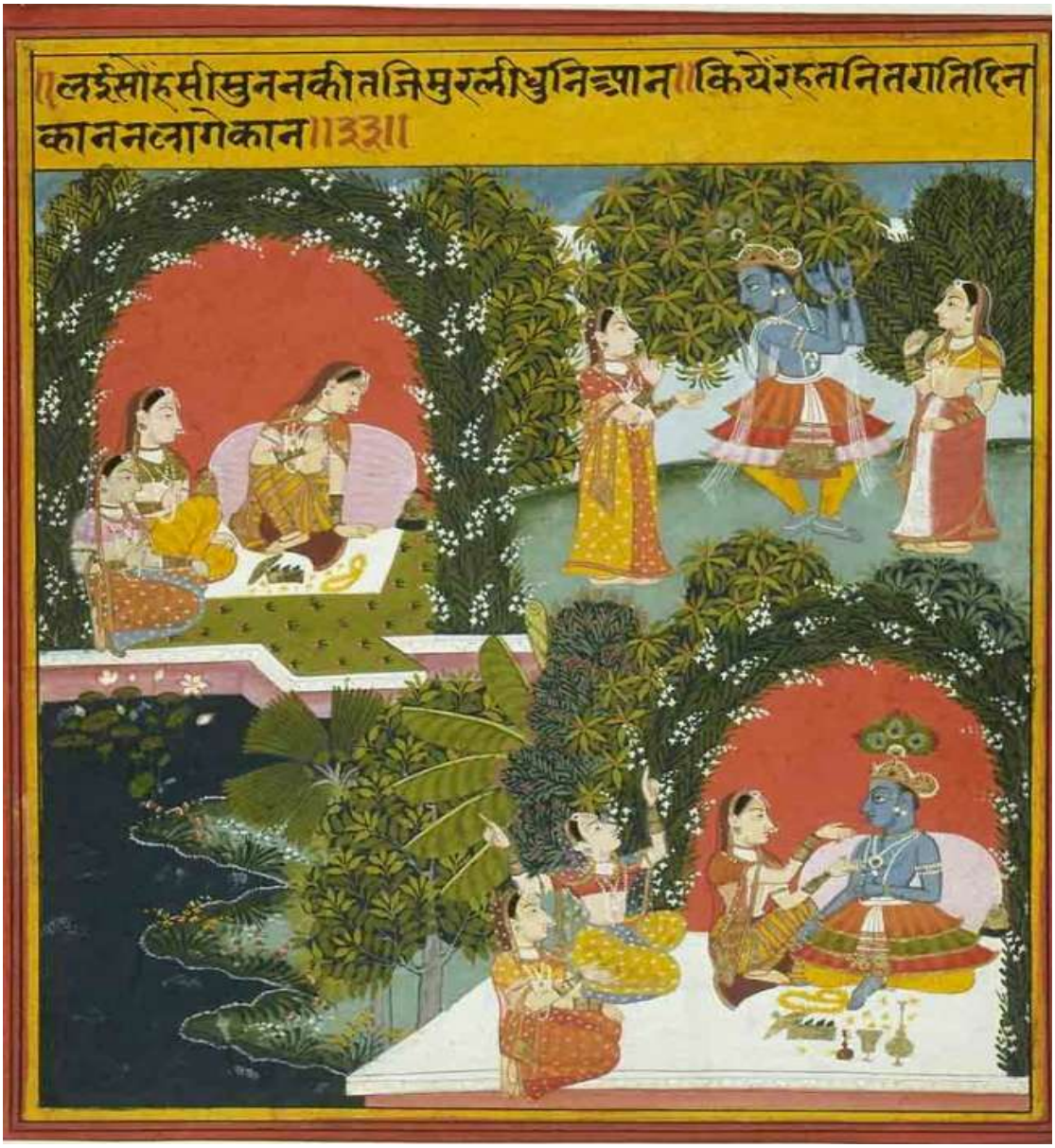

परिशिष्ट : चित्र - 28

बिहारी के दोहों की घटनापूर्ण वर्णन की विशेषता इस दोहे में भी अभिव्यक्त हुई है। बिहारी कृष्ण की बाँसुरी की धुन से राधा के भीतर उत्पन्न अनुराग को उसकी सखी के माध्यम से नायक अर्थात् श्रीकृष्ण के समक्ष व्यक्त करते हैं। राधा की सखी श्रीकृष्ण को बताती है- उसका तुम पर अनुराग तो इस कदर है कि जब से राधा ने आपकी मुरली का मधुर संगीत, उसकी सुमधुर ध्वनि सुन ली है तभी से उसे कोई अन्य ध्वनियाँ सुनाई ही नहीं देती। अर्थात् जैसे राधा ने शपथ सी ली हो कि आपकी मुरली के अलावा कोई अन्य ध्वनि सुननी ही नहीं है। आपके और मुरली के इसी अनुराग के कारण वह दिन-रात नित्य ही अपने कानों को वन की ओर ही इस आशा में लगाये रहती है कि आपकी मुरली की धुन कब सुनाई दे जाये। इस दोहे में राधा की मुरली की धुन को सुनने की चेष्टा सुंदर है जिसे अन्य कोई भी धुन अब सुनाई ही नहीं देती।

इस दोहे पर एक सुंदर चित्र में पूर्ण घटना, कृष्ण का मुरली वादन तथा उसके बाद से राधा की दशा और सखियों द्वारा कृष्ण को यह सन्देश देना सभी कुछ चित्रित हुआ है। इस चित्र में मुरली बजाते हुए श्रीकृष्ण तथा उनके पास उसी धुन को सुनती हुई राधा का चित्रण है। इसी चित्र के दूसरे दृश्य में राधा का मुख इस प्रकार से चित्रित किया गया है कि जैसे कृष्ण की मुरली की धुन की दिशा में राधा के कान धुन सुनने के प्रयास में संलग्न हों। एक अन्य दृश्य में सखियाँ हैं जो अलग-अलग मुद्राओं में अंकित हैं तथा राधा का मुरली के लिए अनुराग को कृष्ण के समक्ष व्यक्त कर रही हैं। इस पूरे एक चित्र में इन तीनों दृश्यों से एक घटना का वर्णन ऐसा ही है जैसे बिहारी ने कुछ शब्दों के माध्यम से दोहे में किया है। इस चित्र में लाल, पीले, हरे, काले तथा नीले रंग का अधिक प्रयोग है। कृष्ण को घेरदार जामा पहने तथा पटका लिए मुरली वादन करने की मुद्रा में चित्रित किया गया है।

(19)

"राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत।

दंपति रति-बिपरीत-सुखु सहज सुरतहूँ लेत।।"[39]

परिशिष्ट : चित्र - 29

इस दोहे में कवि बिहारी ने राधा कृष्ण के माध्यम से नायक-नायिका द्वारा उठाये जाने वाले विपरीत रति सुख का वर्णन किया है। राधा ने कृष्ण के तथा कृष्ण ने राधा के वस्त्र धारण कर लिए हैं। इस प्रकार से सहज रतिक्रीड़ा का जो आनंद उठाया वह वेष परिवर्तित होने के कारण विपरीत रति का आनंद हो गया है। इस दोहे में बिहारी इसी प्रसंग का वर्णन करते है कि राधा हरि और हरि राधा का वेश धारण कर मिलन स्थल पर आ गये हैं। यहाँ वह सहज दम्पति, रति सुख में भी विपरीत रति का सुख इस वेशभूषा के परिवर्तन के कारण भोग रहे हैं।

बिहारी ने जो विपरीत रति का चित्र इस दोहे के माध्यम से खींचा है उसे काँगड़ा शैली के एक चित्रकार ने रंगों से उकेर दिया है। इस चित्र में नारी सुलभ कोमलता, लम्बी पतली तथा सुंदर अँगुलियाँ कृष्ण को राधा के वेश में और भी अधिक आकर्षित करती हैं। वहीं कृष्ण का राधा के आभूषणों को धारण करके खंजन नयनों के द्वारा चित्र में प्राकृतिक सुषुमा को भी चित्रकार ने जीवंत बना दिया गया है। आसमान स्वाभाविक नीला चित्रित हुआ है। रंग-संयोजन में हरे, पीले, सफ़ेद और नीले रंग का उत्तम संयोग है जबकि सूर्य का रंग कोई प्रभाव नहीं डाल पाता।

(20)

"भौंहनु त्रासति, मुँह नटति, आँखिनु सौं लपटाति।

ऐंचि छुड़ावति करु, इँची आगैं आवति जाति।।"[40]

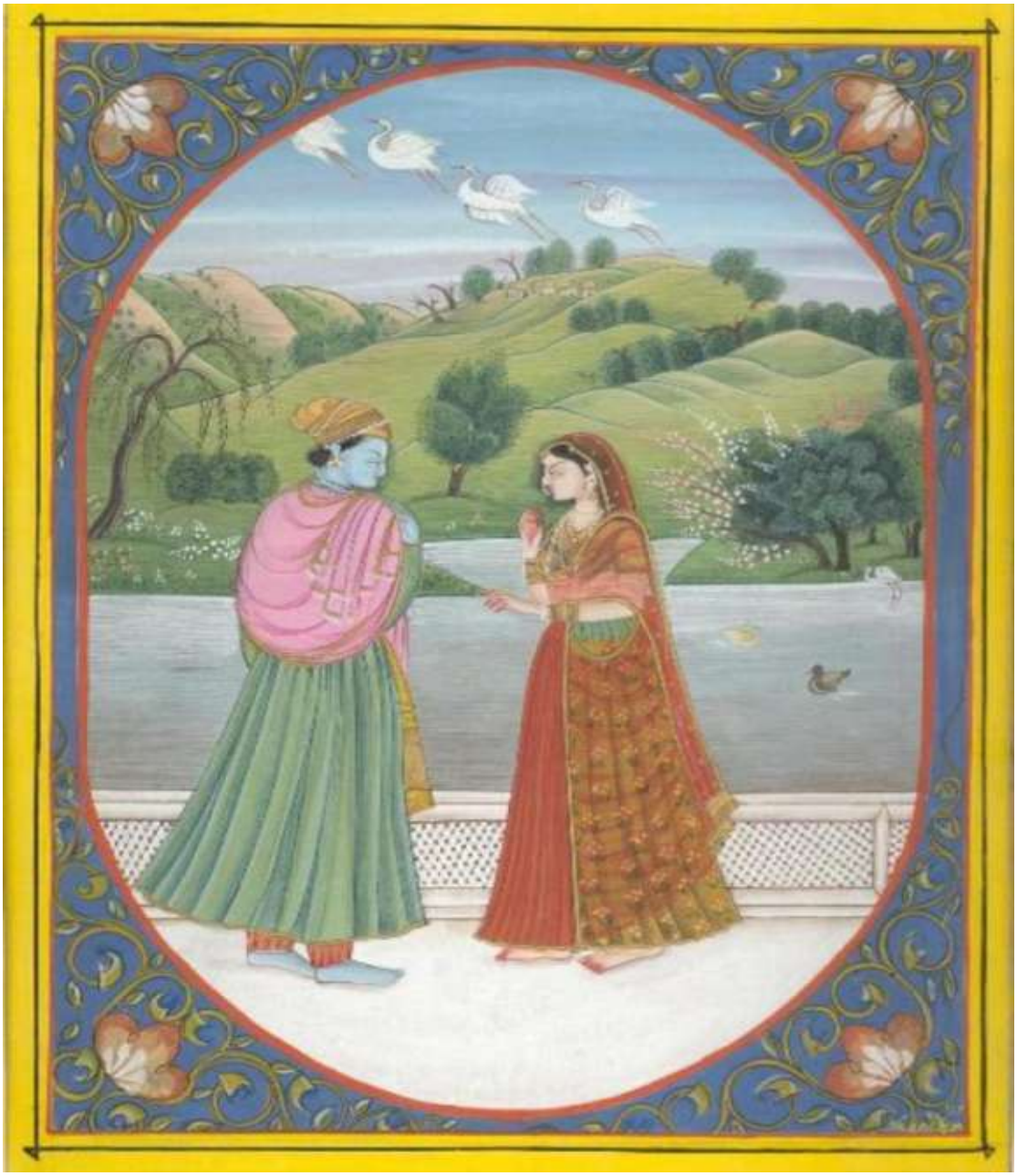

परिशिष्ट : चित्र - 30

इस दोहे में नायिका की क्रियाएं व मुख मुद्राएँ बड़ी चातुरी भरी हैं। नायिका के नायक से प्रथम मिलाप के समय नायक द्वारा हाथ पकड़ने पर नायिका जो चेष्टाएँ कर रही है उसकी प्रशंसा अंतरंग सखी स्वगत करती है - प्रवीण नायिका कितने प्यारे भाव भर रही है। एक ओर तो नायक के हाथ पकड़ने पर उसे भौंह को बनावटी रोष में लाकर यह सूचित करती है कि तुम्हारा मुझे यूँ पकड़ना ठीक नहीं है और मुँह से भी नहीं-नहीं करती है पर आँखों से ऐसे लिपटती चेष्टा करती है जैसे नायक के रूप पर लुभा रही हो। यह चेष्टाएँ यहाँ तक हैं कि खींचकर हाथ को नायक से छुड़ाने का प्रयास करते हुए भी उस खींचातानी में स्वयं ही खिंची हुई सी धीरे-धीरे नायक की ओर आगे आती जाती हो। अर्थात यह तुम्हारा निराला प्रेम है कि इन प्रयासों के बाद भी तुम नायक की ओर समीप होती जा रही हो। डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन के शब्दों में, "नायिका की रसभरी चेष्टाओं का अद्वितीय बिम्बविधान किस क्रमिकता और सामासिकता से किया गया है।... यह गागर में सागर ही नहीं बल्कि बिन्दु में सिन्धु ही है।"[41] नायिका की यह प्रेममयी चेष्टाएँ, लोक-लाज और प्रेम के भाव दोनों के द्वन्द के साथ बड़ी मोहक हैं। भौंहों में बनावट, मुख से ना, आँखों से लिपटना और हाथ छुड़ाने का ऐसा प्रयास कि आगे आते जाना, नायिका की इन सभी क्रियागत चेष्टाओं का वर्णन बिहारी ने जिस मनोयोग से किया है उससे एक पूरा दृश्य नेत्रों के समक्ष मानस में निर्मित हो जाता है। इसे पत्र पर उतारने का प्रयास काँगड़ा शैली में हुआ है। 17वीं शताब्दी के इस चित्र में नायक तथा नायिका सरोवर के पास खड़े हैं जहाँ पार्श्व में बगुले, सारस आदि पक्षी आसमान और सरोवर में चित्रित किये गये हैं। वातावरण में पेड़-पौधों और पहाड़ों का चित्रण सुंदर है। नायक सरोवर के पास ही नायिका का हाथ पकडे खड़ा है जिस पर नायक को नायिका भौंहों में बनावटी रोष से ऐसा करने के लिए मना कर रही है, परन्तु उसकी आँखें नायक पर उसके प्रेम में प्रेमाविभोर होकर लिपटती जाती है। नायक के द्वारा पकड़े हाथ को उसकी पकड़ से छुड़ाने का प्रयास

करते हुए दिखाई गयी नायिका उस नायक की ओर ही अपनी शारीरिक असमर्थता दिखा कर बढ़ती जा रही है। चित्र के माध्यम से बिहारी का पूरा भाव-बोध संप्रेषित हो जाता है जो कि बिहारी के शब्द चित्रांकन के कारण ही सरल हो पाया होगा। चित्र की सज्जा में आलेखन युक्त हाशिये का प्रयोग है तथा "स्त्रियों को चोली, लहंगा और पारदर्शी चुन्नी पहनाई गयी है। गले में माला, माथे पर बिंदी, पैरों में पायल, हाथों में चूड़ियाँ तथा अंगूठियाँ आदि पूर्णतया भारतीय परिवेश का द्योतन करती है। पुरुषों को अंगरखा पजामा तथा पगड़ी बाँधे दिखाया गया है। कुछ-कुछ मुग़ल परिधानों की झलक इनके पहनावे में मिलती है।"[42]

(21)

"भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि।

इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि।।"[43]

परिशिष्ट : चित्र - 31

उक्त दोहा नायिका के माथे पर लगे लाल तिलक तथा अक्षत के सौन्दर्य पर आधारित है। नायिका पूजन से निवृत्त होकर मस्तक पर लाल तिलक जिस पर पूजन के अक्षत भी लगें हैं, उन्हें धारण किये हुए बाहर विराजमान है। उसकी इस शोभा को देखकर सखी नायक के समक्ष उसका वर्णन चन्द्र, राहू और मंगल की उपमा देकर करती है कि, हे ललन! भाल अर्थात् मस्तक पर लगी लाल बिंदी जिस पर अक्षत विराज रहें है, ऐसे लगते हैं मानों चन्द्र की कलाएं राहू के भय से विभक्त होकर, भागकर मंगल में आ बसी हो।

नायिका के इस सौन्दर्य को व्यक्त करता हुआ एक सुंदर चित्र मेवाड़ शैली का है जिसमें सुंदर रंग प्रयोग से उक्त दोहे की सुन्दरता और भी अधिक बढ़ गयी है। चित्र में एक ही साथ दो दृश्यों का चित्रण है जिसके एक दृश्य में नायिका अपने घर के द्वार पर लाल रंग की बिंदी के साथ अक्षत का तिलक लगाकर बैठी है। दूसरे दृश्य में नायिका की दो सखियाँ कृष्ण के समक्ष नायिका के माथे पर सुशोभित लाल बेंदी तथा अक्षत मिले सौन्दर्य का वर्णन करते हुए चित्रित की गयी हैं। एक अन्य छोटे से दृश्य में आकाश में चन्द्र, मंगल तथा राहु का चित्रण है जो सखियों के द्वारा दी गयी उपमा की ओर संकेत है। यह दोहा जिस प्रकार अपनी उत्तम कल्पना से सुंदर बन पड़ा है उसी प्रकार यह चित्र भी सभी मुद्राओं विशेषतः सखी का उस दिशा की ओर हाथ करके संकेत करना जिस दिशा में राहु, चन्द्र और मंगल चित्रित हैं, अप्रतिम बन पड़ा है। मुख्यतः लाल, हरे, नीले, पीले रंगों के साथ केसरिया, गुलाबी तथा सफेद रंग का प्रयोग सुंदर है।

(22)

"भूषन-भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।

सुधे पाइ न धर परैं सोभा हीं कैं भार।।"[44]

परिशिष्ट : चित्र - 32

बिहारी का यह दोहा दूती की चातुरी और नायिका के शरीर की कोमलता को व्यक्त करता है। बिहारी के दोहे की यह नायिका अपने यौवन तथा रूप के कारण लचकती हुई सी पाँव रखती है जिसकी वजह से दूती को उसका शीघ्र अभिसार करने में बहुत विलम्ब हो रहा है। अतः दूती बड़ी चतुरी से उसके सौकोमार्य की प्रशंसा कर उसको भूषण आदि से सज्जित करने के बखेड़े से बचने के निमित्त नायिका को बड़ी चातुरी से कहती है- इस नवयौवन और कोमल शरीर पर तुम इन गहनों का भार कैसे संभाल पाओगी क्योंकि तुम्हारे यह पैर तो इसी शोभा के भार से ही पृथ्वी पर सीधे नहीं पड़ पा रहे हैं। अतः यह भूषण पहनने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है।

ऐसी कोमलांगी नायिका का चित्रण बसोहली शैली में उसकी सखी के साथ एक चित्रकार ने चित्रित किया है। वह नायिका इतनी कोमल और कृश है कि भूषण के भार तो दूर की बात स्वयं के भार से ही लड़खड़ा कर सीधे पाँव नहीं रख पा रही। चित्र में वह सहारे के लिए वृक्ष की डाल को भी पकड़े खड़ी हुई है ताकि संभल सके। जिससे उसकी सखी कहती है कि तुम्हें तो आभूषणों को भी इस कोमल और सुकुमार शरीर पर धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम्हारे पैर तो इस शोभा के ही भार से सीधे नहीं पड़ रहे है। इस चित्र में बिहारी के उक्त भाव, उचित और सुंदर रंग-योजना से आकर्षण बन पड़े है, परन्तु प्रभावशाली उतने नहीं है। नायिका सखी की तुलना में अधिक पतली है परन्तु भूषण उतने ही अधिक नायिका ने धारण भी किये हुए हैं। हाशिये पर प्रयुक्त पीला रंग और पार्श्व में प्रयुक्त हुआ हरा रंग मुख्य रूप से चित्रित है तथा लाल व नीला रंग भी उचित स्थान पर प्रयुक्त होकर सुंदर बन पड़ा है।

(23)

"बिधि, बिधि कौन करै ; टरै नहीं परै हूँ पानु।

चितै कितै त लै धरयौ इतौ इतैं तन मानु।।"[45]

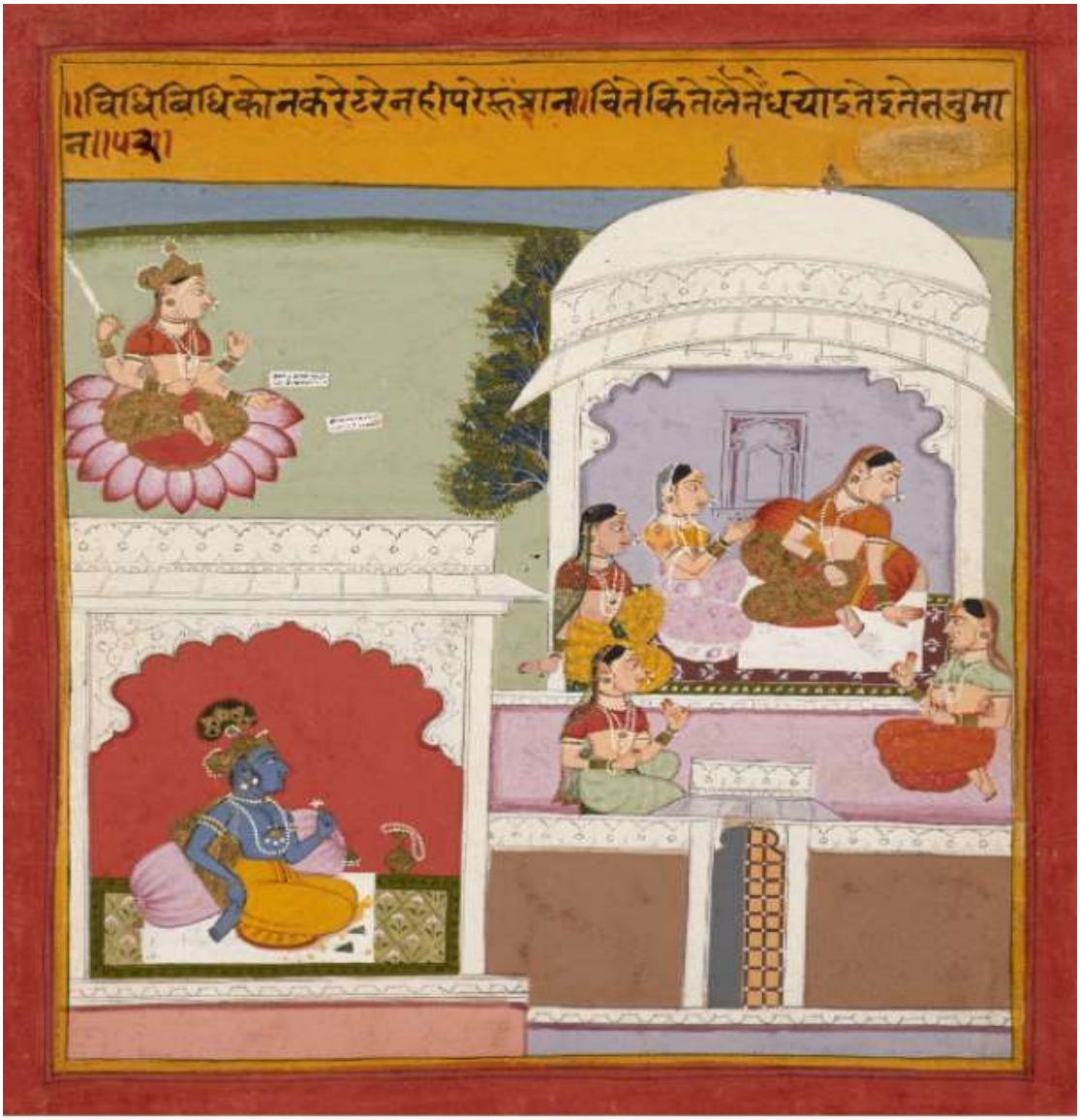

परिशिष्ट : चित्र - 33

यह वचन सखी का मानिनी नायिका से है। जिसमें नायिका को उसकी सखी कहती है कि तेरा मान अर्थात् रूष्टता भी ऐसी है जो कि नायक के पैरों पड़ने पर भी नहीं टलती। हे देव! अब कौन-कौन सी रीति और यत्न कियें जाए कि उसका यह मान अब चला जाये। सखी नायिका से कहती है कि तू थोड़ी देर इधर तो देख और बता की इतना अधिक मान तेरे इतने से शरीर में कैसे समा जाता है अर्थात् इतनी अधिक रुष्टता इतने से शरीर में अच्छी नहीं है। नायक के इतना मनाने पर अब तो मान जा।

इस दोहे में नायिका का मान किये हुए बैठना, कृष्ण का पैरों पड़ना और सखी का समझाना, सभी कुछ शब्दों के माध्यम से बिहारी ने चित्रांकित किया है। इस शब्दचित्र का रंगों में चित्रांकन मेवाड़ शैली में हुआ है। इसमें एक ओर नायिका का मान किये मुख घुमा कर बैठना चित्रित है जिसे कुछ सखियाँ समझाने का प्रयास कर रही हैं और दूसरी ओर दृश्य में नायक का अपने भवन में बैठकर नायिका की मानिनी अवस्था पर विचार करते हुए चित्रांकित हुआ है। इस चित्र में इस तथ्य पर तो प्रकाश नहीं पड़ता कि नायक ने नायिका के पैरों पड़े हों, परन्तु फिर भी नायिका को सखियों द्वारा हाथ जोड़कर समझाने का प्रयास करना उक्त दोहे की निर्मिति पर इस चित्र के आधारित होने की ओर संकेत करता है। चित्र में पीले और हरे तथा सफ़ेद रंग से अधिकतर चित्र को सजाया गया है। कहीं-कहीं गुलाबी रंग का भी इसमें प्रयोग हुआ है।

(24)

"नाक मोरि, नाहीं ककै नारि निहोरैं लेइ।

छुवत ओठ बिय आँगुरिनु बिरी बदन प्यौ देइ।।"[46]

परिशिष्ट : चित्र - 34

इस दोहे के प्रसंगानुसार नायक नायिका को अपने हाथ से पान खिलाता है। उस नायक के हाव तथा नायक की छेड़छाड़ का वर्णन एक सखी अन्य सखी से करती है- नायिका नाक मरोड़ कर तथा नहीं-नहीं करके उपकार करने की प्रार्थना में नायक द्वारा दी जाने वाली पान की बीड़ी मुंह में लेती है, इस बीच प्रियतम मुख में पान देने के साथ ही उसके दोनों ओठों को उँगलियों से छुआ जाता है। कवि बिहारी के इस दोहे में नायिका का गतिशील क्रियात्मक वर्णन है तथा एक पूरा गतिशील दृश्य नायक और नायिका के बीच घटित हुआ है। नायिका का नाक मरोड़ना अर्थात् सिकोड़ना, नहीं-नहीं कहते हुए मान जाना, और अब नायक को उसे पान खिलाने के बहाने ओठों को उँगलियों से छुआ जाना, जैसी विविध क्रियाएँ इस दोहा छंद में बिहारी ने दृश्यात्मक रूप में बाँध दी है।

कवि बिहारी के इसी दृश्य को उद्घाटित करने का प्रयास बसोहली शैली के एक चित्र में हुआ है। इस चित्र में नायक तथा नायिका रूप में कृष्ण-राधा का चित्रण हुआ है, जो आसन पर विराजमान हैं। श्रीकृष्ण राधा के मुख तक पान की बीड़ी देने के निमित्त हाथ ले जाने का प्रयास करते हुए चित्रित हैं जिनके उस हाथ को राधा अपने दायें हाथ से पकड़कर रोकती हुई अर्थात् अपनी असहमति जाहिर करते हुए दृष्टिगत हुई है। कृष्ण-राधा का यह चित्र इसलिए भी आकर्षक है क्योंकि राधा-कृष्ण का चित्रण बसोहली शैली की विशेषता अनुसार अवश्य ही ढालदार माथा, लम्बी नाक, कोमलांगी शरीर के साथ हुआ है, परन्तु इस चित्र में एक आकर्षण है। इनकी चेष्टागत मुद्राएँ हैं जो दर्शक का ध्यान अपनी ओर खींच लेती हैं। बादलों के चित्रण में शैली अनुरूप क्षितिज पर सफ़ेद रंग की वक्राकर लाइनों को एक पतली सी पट्टी पर खींचकर हुआ है। हाशिये पर प्रयुक्त पीला रंग पार्श्व में प्रयुक्त लाल, पीले रंग को अधिक उभारने में भी सफल हुआ है। बिहारी के दोहे पर निर्मित ऐसे ही चित्र उनके काव्य में चित्रों के तथा चित्रों में काव्य के सम्बन्ध को भी स्पष्ट करने में अधिक सफल हुए हैं।

(25)

"बतरस - लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ।।"[47]

परिशिष्ट : चित्र - 35

राधिका जी ने वार्तालाप के आनंद के लोभ में श्रीकृष्ण जी की मुरली छिपा कर रख दी है और उनके भाव-भंगिमाओं व चेष्टाओं के द्वारा वह कृष्ण जी के साथ वाक्य-विनोद करती हैं, जिसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से करती है- बातों के रस के लालच में श्रीकृष्ण की मुरली राधिका जी ने छिपा कर रख दी है जिससे अब इनके बीच वाक्य-विनोद हो रहा है। यह संवाद भी ऐसा है कि उसमें सभी भाव समाहित हैं। इस विनोद में श्रीकृष्ण द्वारा मुरली मांगने पर राधा जी सौंह भरती हैं (मुझे सच में मुरली का ज्ञान नहीं है) और साथ ही साथ में भौंहो में हंस भी देती हैं। जिससे कृष्ण को उन पर संदेह हो जाये और वे निराश होकर अन्यत्र न चले जाएँ। परन्तु कृष्ण द्वारा मुरली देने के लिए कहने पर झट से मुकर जाती हैं कि मुरली मैंने नहीं छिपाई। कवि बिहारी का यह उक्त दोहा राधा की क्रियाओं, भाव-भंगिमाओं पर आधारित चेष्टागत वर्णन है। दूधनाथ सिंह के शब्दों में, "रूप स्वभाव, मनोविज्ञान, भंगिमा सबका वर्णन बिहारी ने इतना चमत्कारिक ढंग से किया है कि उनकी कला की बारीकी और सूझ पर मुग्ध रह जाना पड़ता है।"[48] मुरली छुपाना, सौंह करना, भौंहो में हँसना, और फिर कृष्ण के मुरली मांगने पर दोबारा से मुकर जाना आदि इन सभी भावों से निर्मित एक पूरा चित्र दृश्यमान रूप में इस दोहे का शब्दों के माध्यम से मानस पटल पर बिहारी चित्रित कर देते हैं। इस चित्र को मेवाड़ के एक चित्रकार ने भी फलक पर रंगों से उतारा है। मेवाड़ शैली के इस चित्र में कृष्ण-राधा तथा उन्हें देखकर बात करती कुछ अन्य सखियों का चित्रण है। कृष्ण राधा के सामने मुरली लेने के लिए हाथ फैलाएं हुए चित्रित हुए हैं तथा राधा मुरली को अपने पीछे छिपाते हुए। राधा ने जिन बातों के आनंद के लिए कृष्ण की मुरली को छिपाया था वह अब प्रेम-विनोद में बदल गया है। प्राक्रतिक सुषुमा, पेड़-पौधें, फूल, आसमान अपने प्राकृतिक रंगों से सजे हैं। अन्य स्त्रियों के साथ राधा तथा कृष्ण का चित्रण मेवाड़ शैली के परम्परागत आकृतियों तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है जिनमें कोमलता लक्षित होती है। चित्र को

हाशिये की तरफ लाल या केसरिया रंग तथा भीतरी बॉर्डर को पीले रंग से सजाया गया है। इसमें ऊपर की ओर संकेतित अर्थ को बिहारी के उक्त दोहे के शब्दों द्वारा लिखा गया है

(26)

"तूँ रहि हौ हीं, सखि , लखौं; चढ़ी न अटा, बलि, बाल।

सबहिनु बिनु हीं ससि - उदै दीजतु अरघु अकाल।।"[49]

परिशिष्ट : चित्र - 36

नायिका ने चतुर्थी का व्रत रखा है। व्रत की समाप्ति के लिए चन्द्रमा को अर्घ्य देना आवश्यक माना गया है। नायिका चन्द्रमा को देखने बार-बार अटारी पर चढ़ती है, उसकी सखी उसे बार-बार श्रम करने से रोकना चाहती है, किन्तु स्पष्ट कहने पर कि तू निराहार है तो अधिक श्रम से कष्ट तुझे होगा, के उत्तर में वह कह देगी की तू भी तो निराहार है, इसलिए वह उसके रूप की प्रशंसा कर उसे अटारी पर चढ़ने से रोकती है। वह कहती है कि तेरे रूप के कारण जब तू अटारी पर चढ़ेगी तो कहीं सभी स्त्रियाँ तेरे रूप की चमक को चन्द्रमा का प्रकाश समझ अकाल अर्घ्य न दे दें, और तुझे इसका दोष लग जाये। अतः हे नायिका तू अटारी पर मत चढ़।

भावार्थ यह है कि हे सखी! तू यहीं रह, मैं चंद्रमा देख आऊँगी। बाला मैं तेरी बलिहारी जाती हूँ, तू अटा पर मत चढ़ क्योंकि तेरे अटा पर चढ़ने से तेरा यह रूप मुख जो चंद्रमा के समान प्रकाशमान है , उसे चन्द्रमा समझने के भ्रम में कुछ स्त्रियाँ बिना चन्द्रमा के ही चंद्रोदय होना समझ अकाल अर्घ्य दे देंगी और इसका दोष भी तुझे ही लग जायेगा। इस दोहे में नायिका के रूप सौन्दर्य के वर्णन से सखी द्वारा उसे रोकने की चेष्टा और चातुर्य प्रशंसनीय है।

इस दोहे पर प्राप्त एक चित्र में नायिका चन्द्रमा देखने के निमित्त अटारी पर चढ़ने के लिए पैर आगे बढ़ाये हुए है, जिसे उसके कंधे पर हाथ रखकर रोकने का प्रयास पीछे से उसकी सखी करती है। सखी का वह हाथ अपने कंधे से हटाने की चेष्टा भी नायिका करते हुए इस चित्र में चित्रित हुई है। नायिका तथा उसकी सखी का यह चेष्टागत वर्णन बिहारी के यहाँ सौन्दर्य के रूप में अधिक मुखर हुआ था, परन्तु इस चित्र में चेष्टाओं की मधुरता में यह दोहा अधिक सुंदर तरीके से फलक पर उतरा है। चित्र में पारदर्शी आँचल के साथ पीले और नीले रंग के लहंगे में इन स्त्रियों की चेष्टायें सुंदर बन पड़ी हैं। अटारी का दृश्य तथा रंग-योजना भी इस

चित्र में प्रभावशाली है, जिसे अँधेरी रात तथा उसमे मुखचन्द्र की चमक से हल्की छिटकती चांदनी के जैसे सुंदर रंगों से उभारा गया है। बिहारी का शब्दचित्रांकन यहाँ रंगचित्रांकन से कहीं अधिक आकर्षित और उत्तेजित करता है।

(27)

"तिय, कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह-कमान।

चलचित- बेझैं चुकति नहिं बंकबिलोकनि- बान।।"[50]

परिशिष्ट : चित्र - 37

नायक नायिका की तिरछी चितवन से घायल है अर्थात् उसकी नजरों से उसके प्रेम-पाश में बंध गया है। अतः अवसर पाकर नायिका से कहता है- हे स्त्री! तूने यह विलक्षण धनुर्विद्या कहाँ से पढ़ी है। यद्यपि बिना ज्या की कमान काम नहीं देती पर तेरी भौंह बिना ज्या (कमान की डोर) के ही कमान से काम लेती है; तिरछा बाण भी ठीक लक्ष्य पर नहीं पहुँचता पर तेरी यह तिरछी चितवन बाण का पूरा काम कर देती है। चंचल लक्ष्य पर निशाना लगाना आसान नहीं है, पर उस चंचल पदार्थ रुपी चित्त को भी तेरी यह चितवन भौंह रुपी कमान से निकलकर बेध देती है अर्थात् तेरी यह धनुर्विद्या बिना ज्या के भौंह रुपी कमान की तिरछी चितवन के बाण चंचल चित्त के लक्ष्य से भी नहीं चूकते हैं। भौंहों को कमान तथा चितवन को बाण कहकर यहाँ बिहारी अलग ही विलक्षण सौन्दर्य पैदा कर देते हैं। जिससे प्रेमी स्त्री के प्रेम पाश में बंधने पर विवश हो जाता है, उसका ह्रदय उस चितवन रुपी बाण से घायल हो जाता है।

यही भाव संप्रेषित करता एक चित्र प्राप्य है जिसमें श्रीकृष्ण तथा राधा नायक-नायिका के रूप में चित्रित हैं। श्रीकृष्ण बसोहली शैली में निर्मित होने वाले विशेष वृक्ष के सहारे खड़े होकर नायिका की और देख रहें हैं तथा नायिका रुपी राधा कृष्ण की ओर तिरछे नेत्रों से देखते हुए चित्रित की गयी हैं। उक्त दोहे का तिरछी चितवन से घायल करने वाला भाव सहज ही इससे इस चित्र में संप्रेषित हो जाता है। बिहारी के दोहों के ज्ञाता इस चित्र को देखने पर इसके भाव को सहज ही अर्थ में ढाल लेगा , यही इस चित्र की विशेषता है। बिहारी के काव्य की भी यही विशेषता है जिसमें शब्दों से ही ऐसे चित्र खींच देना कि उन पर आधारित चित्रों को पाठक सरलता से समझ और पहचान लेता है। नीले हाशिये के साथ पार्श्व में प्रयुक्त लाल, नीला, हरा और सफ़ेद रंग इस चित्र को दर्शनीय बनाने में सक्षम है।

(28)

"ढोरी लाई सुनन की,कहि गोरी मुसकात।

थोरी थोरी सकुचि सौं भोरी भोरी बात।।"[51]

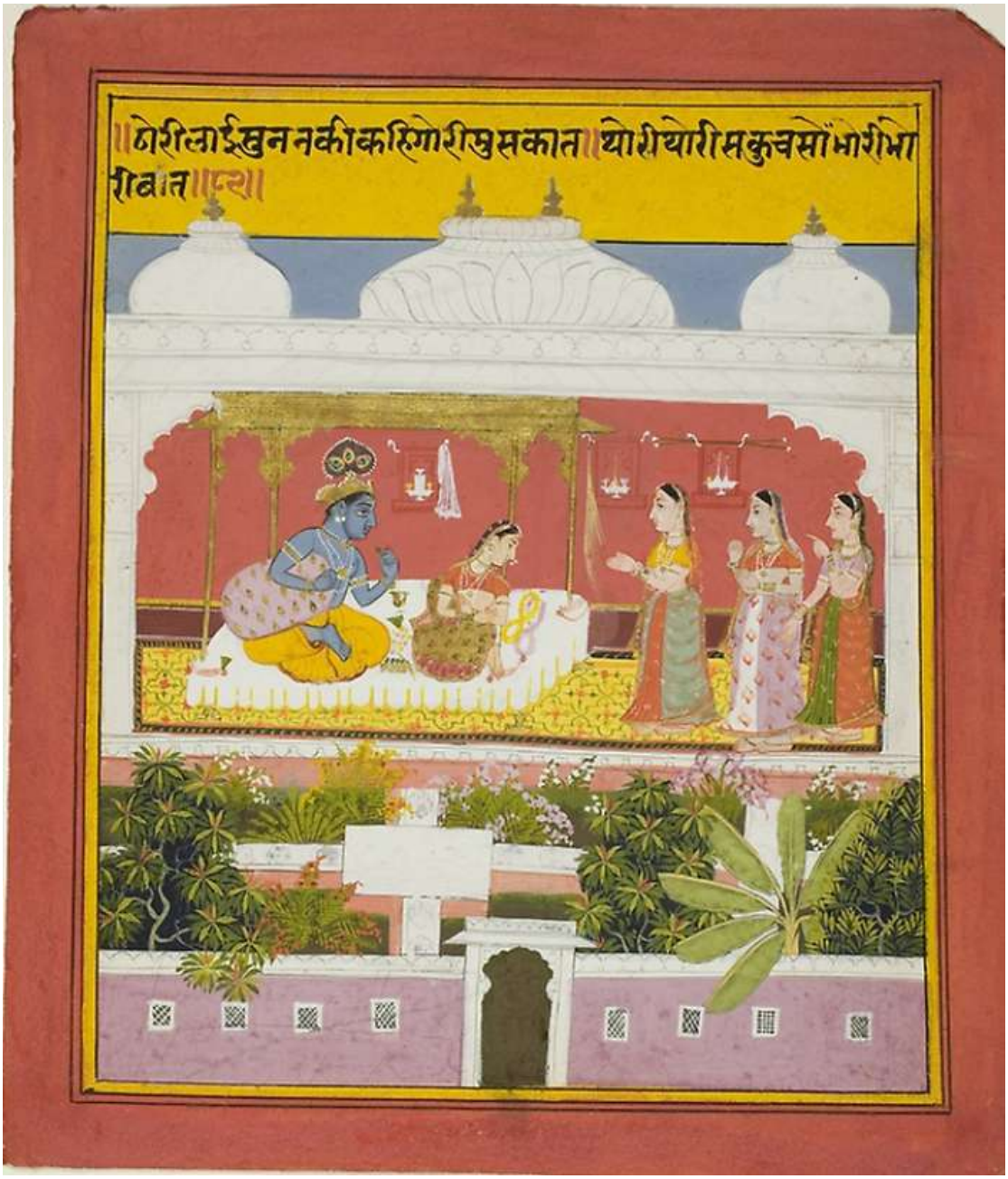

परिशिष्ट : चित्र - 38

नायिका ने नायक को मुस्कुराकर भोली बातें करते सुना है। उससे उसको ऐसा आनंद मिला है कि वैसी ही बातें सुनने की नायक को अब धुन ही लग गयी है। अपनी इसी दशा का वर्णन वह सखी से करता है- उस गोरी ने मुस्कुराते हुए थोड़ा सकुचा कर लज्जा से भोली-भोली बातें कहकर मुझे वैसी ही बातें सुनने की अभिलाषा अर्थात् धुन ही लगा दी है। बिहारी का उक्त दोहा नायक के नायिका के प्रति अनुराग को व्यक्त करता है, जिसमें नायक रुपी कृष्ण नायिका रुपी राधा की लजाकर मुस्काती हुई भोली-भोली बातों पर ही मोहित हो गया है और अब वही सुनने की धुन लगा बैठा है।

इस दोहे पर एक चित्र जो मेवाड़ शैली में परिलक्षित होता है वह उक्त दोहे की गतिशीलता को तो उस रूप में संप्रेषित नहीं कर पाता परन्तु इस अर्थ को जहाँ तक संभव हो सका है संप्रेषित करने का चित्रकार द्वारा किया गया प्रयास अवश्य अच्छा है। इस चित्र में रंग-योजना का सुंदर विधान हुआ है। भवन में राधा-कृष्ण को चित्रित किया गया है जिसमें राधा ने कृष्ण से लज्जावश मुख घुमाया हुआ है और श्रीकृष्ण उसकी ओर देख रहे हैं ताकि उसकी

बातों का रस लें सके। पौधों को प्राकृतिक हरे रंग से चित्रित किया गया है तथा इसमें स्वर्ण का भी प्रयोग मेवाड़ शैली की अन्यतम विशेषता है। राधा- कृष्ण की मुद्राएँ भी इस चित्र में आकर्षक हैं। पार्श्व में प्रयोग किये गये रंग इसे और अधिक सुन्दरता प्रदान करते हैं।

(29)

"चितई ललचौहें चखनु डटी घूँघट-पट माँह।

छल सौं चलि छुवाइ कै छिनकु छबीली छाँह।।"[52]

परिशिष्ट : चित्र - 39

नायक को देखकर नायिका ने जो अनुरागोत्पादक तथा अनुराग व्यंजक चेष्टाएँ की हैं, उसी का वर्णन बिहारी करते हैं। घूँघट के पट के बीच से पहले तो उस नायिका ने डटकर अर्थात् स्थिरतापूर्वक नायक की ओर भली-भाँती ललचाती हुई नजरों से देखा और फिर वह किसी व्याज से छबीली स्त्री नायक को अपनी छाया ही क्षण मात्र के लिए उसके पैरों से छुवाती हुई चली गयी। यहाँ छाया छुआने से यह भाव भी सूचित होता है कि "नायक उसको ऐसा प्रिय लगा कि यद्यपि वह उसको अपना शरीर लज्जावश न छुआ सकी, तथापि छाया ही को उसके शरीर से छुआकर उसने स्पर्शाभास का सुख प्राप्त किया।"[53]

नायिका की यह अनुराग व्यंजक प्रेम भरी चेष्टाएँ काँगड़ा शैली के एक चित्र में व्यक्त हुई हैं। इस चित्र में कृष्ण रुपी नायक तथा नायिका राधा का चित्रण किया गया है जो सभी सभाजनों के सामने लज्जावश अपने प्रेम को स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर सकती इसलिए उसे आँचल के पट से कृष्ण की ओर स्थिरतापूर्वक प्रेम भरी नजरों से देखते हुए चित्रित किया गया है। नायक भी नायिका के नेत्रों से नेत्र मिलाकर उसे देखते हुए चित्रित है। जिसमें राधा की परछाँहीं कृष्ण के पैरों के पास बहुत ही हल्की तथा सुंदर रूप से उभारी गयी हैं। काँगड़ा शैली के इस चित्र में नायिका की भंगिमा लज्जापूर्ण प्रेम को व्यक्त करते हुए संकोची भी हैं तथा कृष्ण उत्साहपूर्वक उन्हें निहार रहे हैं। बिहारी के उक्त दोहे पर आधारित चित्र काँगड़ा शैली की सभी विशेषताओं को भी अपने में समाहित किये हुए है, "स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही अंगों में यथोचित गोलाई तथा सुडौलता है। स्त्रियों के चेहरे, अंग-भंगिमाओं तथा हस्त-मुद्राओं के बनाने में चित्रकार ने कमाल कर दिया है।... काँगड़ा के चित्रकारों ने नेत्रों को भावपूर्ण तथा उल्लासपूर्ण बनाया है जिससे जीवन की सजीवता परिलक्षित होती है।... कृष्ण के गले में मोतियों की मालाएँ और लंगोटी लगाये या छोटे जांघियों के समान वस्त्र पहने और सर पर गोल टोपी लगाये अंकित किया गया है।"[54] रंग योजना में काँगड़ा के इन चित्रकारों ने,

"अमिश्रित रंग जैसे लाल, पीले तथा नीले रंगों का प्रयोग किया है, जो आज भी उसी प्रकार चमकदार बने हुए हैं। मिश्रित तथा हल्के रंगों में चित्रकार ने गुलाबी, बैंगनी, हरा, फाखताई तथा हल्के नीले रंग का प्रयोग किया है।"[55] यह चित्र बिहारी की चित्रांकन क्षमता को शब्दचित्र से रंगचित्र में बदलकर स्पष्ट रूप में मुखर करता है।

(30)

"बढ़त निकसि कुच-कोर रुचि, कढ़त गौर भुजमूल।

मनु लुटि गौ लौटनु चढ़त, चोंटत ऊँचे फूल।।"[56]

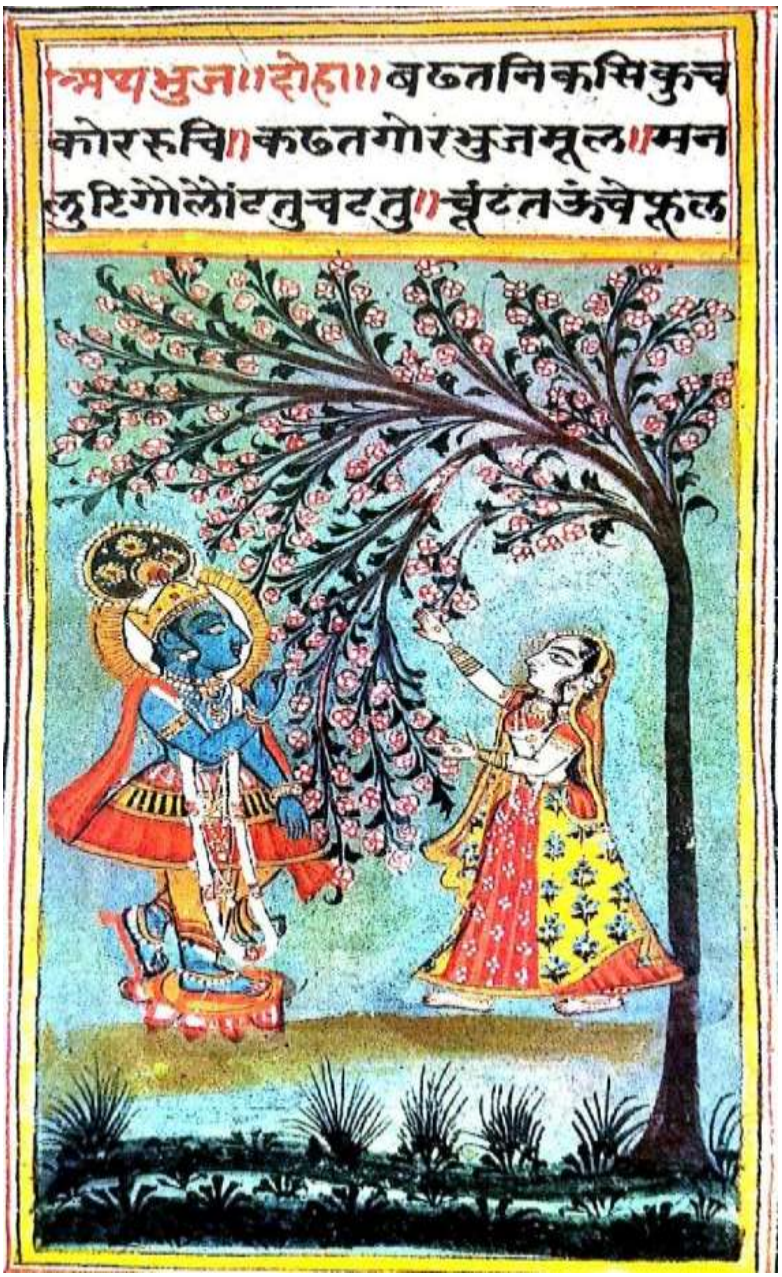

परिशिष्ट : चित्र - 40

नायक ने नायिका को किसी वृक्ष की ऊँची डाल से हाथ ऊँचा कर तथा गर्दन को पीछे की ओर करके फूल तोड़ते देखा। जिससे हाथ ऊँचा करने तथा गर्दन के पीछे की ओर झुकी होने के कारण उसके कुच आगे को निकल गये हैं। ऐसा करने पर उसके आँचल के सरकने से भुजाएँ तथा उदर कुछ उघर गये । इस अवस्था में उसकी त्रिबली को देखकर नायक का मन उसके वश से बाहर हो रहा है। अपनी इसी व्यथा को वह व्यंजित करते हुए मिलने की उत्कंठा व्यक्त करता है - उसके (नायिका) द्वारा ऊँचे फूलों को तोड़ते समय उसके उभरकर आये वक्ष की कोरो की शोभा तथा गोर-गोर भुजमूलों और उदर के उघड़ने से मेरा मन मानो उस उदर की बालियों को चढ़ते हुए देखकर लुट सा गया है। अर्थात् उसके रूप- सौन्दर्य से मेरा मन मेरे वश से बाहर होकर लुट चुका है।

यह भाव व्यंजित करता यह दोहा चित्रांकन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि नायिका की क्रियाएँ और फूल तोड़ने का प्रयास करते हुए नायिका की चेष्टाएँ भी इतनी मोहिनी हैं कि नायक उन चेष्टाओं पर मोह जाता है। नायिका के चेष्टागत मोहिनीरूप और नायक के इस पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण एक अन्य चित्रकार द्वारा रंगों के माध्यम से किया गया है। इस चित्र में देखने पर इसमें बसोहली शैली के चित्रों की विशेषताओं की झलक मिलती है। विशेष प्रकार से एक पतले से तने पर पूरा पेड़ एक ही दिशा में झुकता हुआ चित्रित किया गया है जिस पर से नायिका फूल तोड़ने का प्रयास कर रही है और नायक रुपी कृष्ण ऐसा करते हुए राधा को देख रहे हैं। इस प्रयास में नायिका ने हाथ को ऊँचा तथा गर्दन को पीछे किये हुए है तथा उसका हाथ ऊँचा करने की वजह से उसका आँचल भी पीछे की ओर हो गया है। जिसके कारण उसके शरीर का अग्र भाग आंचल के पट के हटने से कुछ उघड़ गया है और उसका उदर दृश्यमान हो रहा है। सामने नायक रुपी कृष्ण भी उस नायिका को ऐसे देखकर उसकी इन चेष्टाओं पर मोहित हो रहे हैं। कृष्ण और राधा के रूप में नायक-नायिका का ये प्रेम

व्यवहार चित्र में बहुत ही सुंदर रूप में चित्रित हुआ है। नायक रुपी कृष्ण ने घेरदार जामा, गलमाल, आभूषण, मोरपंखी, मुकुट तथा नायिका रुपी राधा ने माथटीका, कर्णफूल के साथ कई अन्य आभूषणों को भी धारण किया हुआ है। लाल, और पीले रंगों की मिश्रित और अधिक प्रयोग में लाई गई रंग-योजना से बिहारी के दोहे पर निर्मित यह चित्र उत्तम बन पड़ा है।

(31)

"चितवत, जितवत हित हियैं, कियैं तिरीछे नैन।

भीजैं तन दोऊ कँपे क्यों हूँ जप निबरैं ना।।"[57]

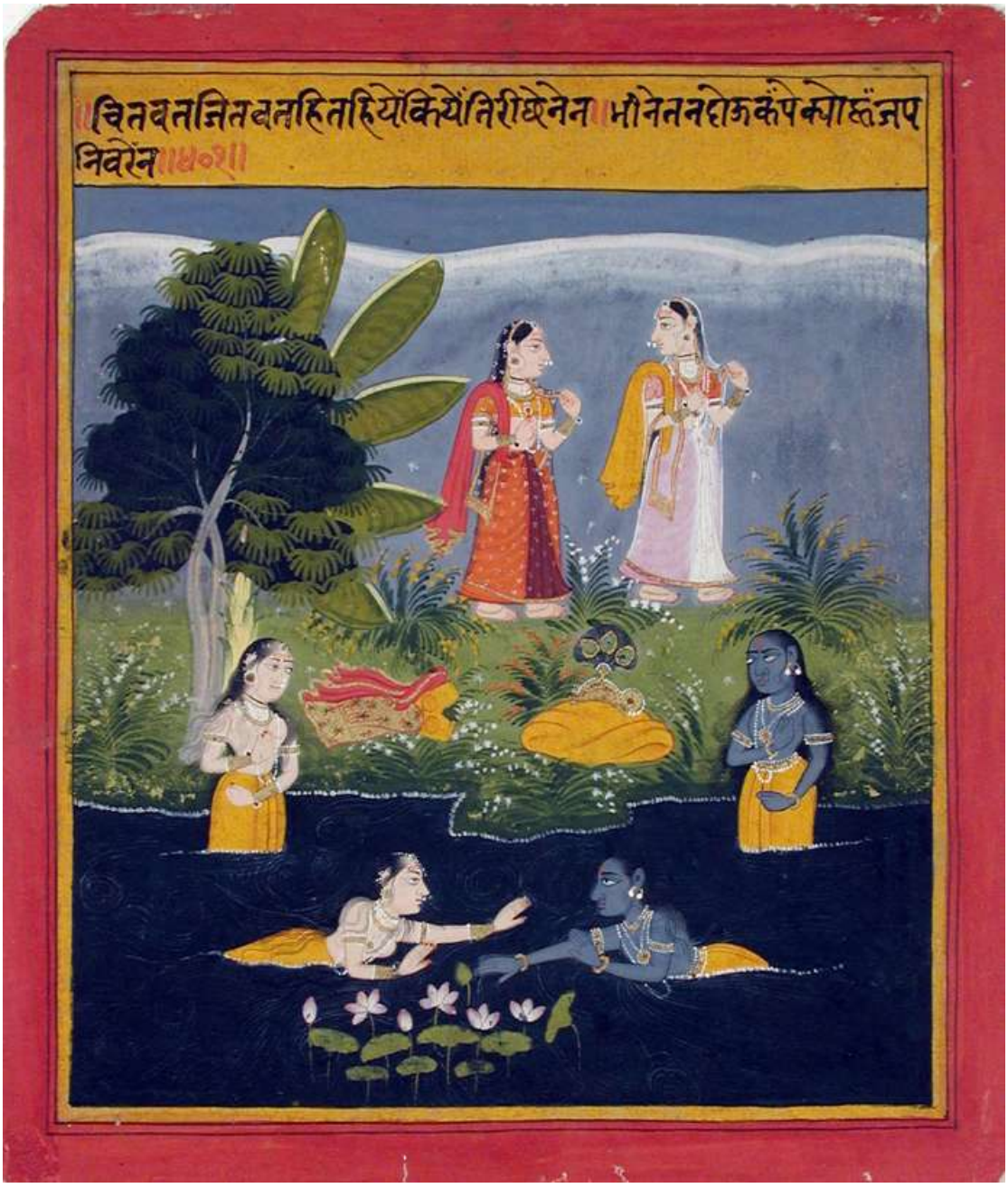

परिशिष्ट : चित्र - 41

इस दोहे के प्रसंग में नायक-नायिका जाड़े के दिनों में जलाशय में स्नान करके, जप करने के उद्देश्य से पानी में ही खड़े होकर तिरछी दृष्टि से परस्पर अपना प्रेम एक-दूसरे पर सूचित कर रहे हैं। इसलिए बहुत अधिक विलम्ब हो जाने पर उनके जप के समाप्त न होने पर सखी का वचन अन्य सखी से है कि- ये दोनों जप करने के बहाने से एक-दूसरे के प्रति हृदय में अपना प्रेम बताते हुए अन्यों की आँखों से आँख बचाकर तिरछे नयनों से परस्पर एक-दूसरे को निहार रहे हैं। ये स्नान कर भीगे तन से ही पानी में खड़े काँप भी रहें हैं, पर इतना समय बीतने पर भी उनका यह कैसा जप है जो कि समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा। प्रेम व्यवहार का एक अन्य ही उदाहरण यह दोहा है। जिसमें भक्ति और तप को अपना प्रेम संप्रेषित करने का माध्यम नायक-नायिका अर्थात् कृष्ण-राधा ने बनाया हुआ है। प्रेम में व्यक्ति हर समय बस अपने प्रियतम को देखना चाहता है। उसका मन एकाग्र होकर किसी अन्य काम में लग पाना इतना सरल नहीं होता । यही कारण है कि यहाँ भी जप करने के उद्देश्य से खड़े हुए राधा-कृष्ण भी मन को एकाग्रचित्त न कर जप के बहाने एक-दूसरे को ही तिरछी चितवन से देख रहे हैं।

बिहारी के उक्त दोहे पर मेवाड़ शैली का एक चित्र भी है जिसमें इस दोहे का सम्पूर्ण भाव संप्रेषित हो रहा है। इस चित्र में सुंदर तथा उचित रंग-प्रयोग द्वारा एक तरफ नदी में राधा-कृष्ण को स्नान करते हुए चित्रित किया गया है, दूसरी तरफ राधा-कृष्ण तप करने के व्याज से पानी में खड़े हैं तथा एक-दूसरे को तिरछी नजरों से देख भी रहें हैं। उन्हीं के पीछे नदी के पास से जाती दो स्त्रियाँ आपस में उनके इसी तप के बारे में बात कर रही हैं कि इनका यह कैसा तप है जो इतना समय बीतने पर भी न तो खत्म होने का ही नाम लेता है और न ही इनके यह भीगे तन इन्हें कंपा ही पा रहे हैं जो कि यह दोनों अपने तप से बाहर ही निकलें। बिहारी के इस पूरे गतिशील घटनापरक चित्रण को यह चित्र उसके भाव सहित उत्तम रूप में व्यक्त कर रहा है। नियमानुसार लाल रंग का बाहरी प्रयोग और भीतर की तरफ पीले रंग की चौतरफा लाइन

जिसमें ऊपर पूरे दोहे को अंकित किया गया है तथा मध्य में इस पूरे चित्र के राधा-कृष्ण का सम्पूर्ण प्रेम-भाव, उनकी नेत्रगत चेष्टा, उनकी तप के निमित्त बनाई गयी मुद्रायें तथा स्त्रियों का स्वाभाविक मुद्रा में उनकी बात करना अत्यधिक सुंदर तथा सजीव हो गया है जो बिहारी के दोहे की सजीवता को रंगों के माध्यम से पूर्ण रूप में प्रदर्शित कर रहा है।

(32)

"तजि तीरथ, हरि - राधिका- तन- दुति करि अनुरागु।

जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होत प्रयागु।।"[58]

परिशिष्ट : चित्र - 42

इस दोहे में कवि बिहारी तीर्थाटन के श्रम को तजकर श्रीकृष्ण और राधा के तन की कांति में अपने अनुराग को लगाकर प्रयाग का सा तीर्थाटन का फल लेने की बात करते हैं। भावार्थ यह है कि, तू तीर्थों को त्याग कर श्रीकृष्ण और राधिका की शरीर की कांति में अपने अनुराग को लगा क्योंकि इससे ब्रज के विहार-वनों के मार्ग में पग-पग पर तुझे प्रयाग जैसे तीर्थराज के भ्रमण का फल मिलेगा अर्थात् इस भक्ति में श्रीकृष्ण के श्यामल और रधिका के गौर वर्ण से एक ओर गंगा-जमुना का फल होगा और वहीं इनमें अनुराग लगने से इनके संगम से सरस्वती के संगम का फल भी होगा। इसी कारण राधिका और कृष्ण के प्रति अनुराग करने से ब्रज के कुंजों में भी प्रत्येक पग पर तुझे किसी एक तीर्थ का नहीं बल्कि प्रयागराज का फल प्राप्त होगा और साथ ही तीर्थाटन का श्रम भी नहीं करना होगा।

बिहारी का उक्त दोहा भक्तिपरक बाह्याडम्बर से परे ध्यान और नामस्मरण पर बल देता है जिसे एक चित्रकार ने एक चित्र में उतारा है। इस चित्र में दो सामान्यजन यही बात करने की मुद्रा में चित्रित हुए हैं। श्रीकृष्ण और राधा को चित्रित कर चित्रकार ने राधा और कृष्ण में ही अपने अनुराग को लगाने का भाव सम्प्रेषित किया है। यह भावपूर्ण वार्तालाप और राधा कृष्ण ब्रज के केलि कुंज के मार्ग में चित्रित किये गये हैं जिससे यह भाव भी सहज ही ज्ञात हो जाता है कि ब्रज के केलि-निकुंज में राधा कृष्ण के प्रति अनुराग भाव से भरे होने पर पग-पग में प्रयाग की अनुभूति होगी। ब्रज और निकुंज के वर्णन के लिए ब्रजगायों और वन का भी चित्रण इस चित्र में किया गया है। चित्र की रंगयोजना बहुत ही सुंदर है तथा वेशभूषा का भी उचित प्रयोग चित्रकार ने किया है। राधा कृष्ण के वस्त्र अभिजातपूर्ण तथा ब्रज के ग्रामवासियों का चित्रण साधारण ग्वाल वस्त्र में किया गया है।

(33)

"देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौ ज्यौ जोबन -जोति।

त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं सबैं बदन मलिन दुति होती।।"[59]

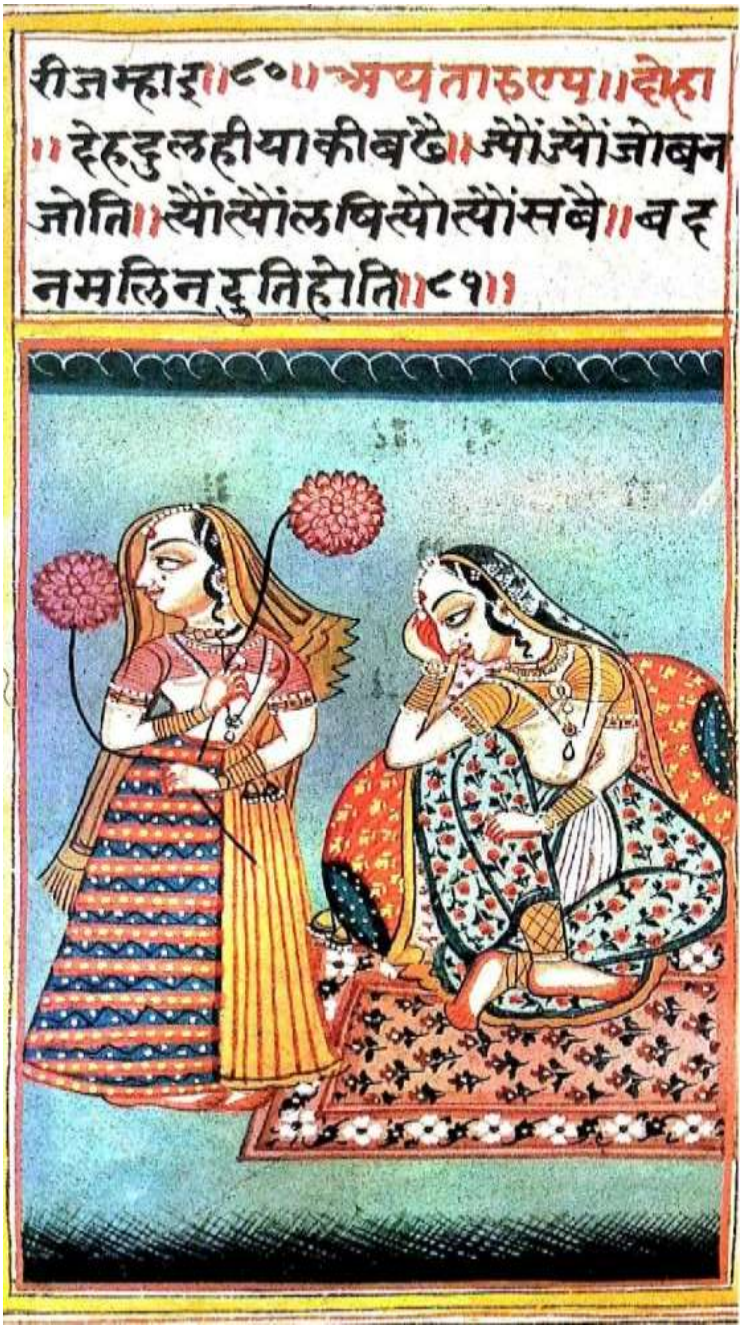

परिशिष्ट : चित्र – 43

नवयौवना नायिका की सखियाँ आपस में बातें करते हुए उसके मुग्धकारी रूप के कारण सौतनों के ह्रदय ईर्ष्या वश जलने पर विचार करती हैं- ज्यों-ज्यों इस दुलहिन की देह में नवांकुर यौवन की चमक छिन-छिन बढ़ रही है वैसे-वैसे ही उसे देखकर सौतनों के शरीर की कांति मारे ईर्ष्या के मलिन होती जा रही है।

यह दोहा बिहारी के रूप सौन्दर्य वर्णन का दोहा है जो कि नवयौवना नायिका के छिन-छिन बढ़ते सौन्दर्य के प्रशंसा का है। इस दोहे पर निर्मित बसोहली शैली के एक चित्र में सुंदर सी कमनीय मुद्रा में बैठी एक स्त्री का चित्रण है जो सौन्दर्य के यौवन में अभी- अभी अंकुरित हुई लगती है। एक और अन्य स्त्री भी इस चित्र में है जो संभवतः इसके रूप की प्रशंसा करते हुए तथा उसमे सौतनों के ह्रदय जलने की बातें करते हुए इसकी सखी हो सकती है। इस दोहे पर निर्मित यह चित्र इसके भाव को बहुत स्पष्ट रूप में तो व्यक्त नहीं कर पाता परन्तु इसमें नायिका की कमनीय मुद्रा, उसके नवयौवन रूप का संकेत देती है तथा अन्य स्त्री के हाथ में पकड़े हुए फले-फूले फूल नायिका के नित बढ़ रहे यौवन को भी व्यंजित कर रहे हैं। इसमें रंगों का संयोजन भी बसोहली के अन्य चित्रों के ही समान है परन्तु नायिका का सौन्दर्य वस्त्रों के रंगों और चित्र सज्जा तथा उसकी मुद्रा के विशेष चित्रण से और भी अधिक बढ़ गया है। इस दोहे में भाव सम्प्रेषण की कमी होने के बावजूद भी कवि बिहारी का यह दोहा सम्प्रेषणीयता में कहीं भी पीछे नहीं है। क्योंकि चित्र की अपनी कुछ सीमायें अवश्य हो सकती हैं परन्तु काव्य में शब्दों की सीमा भी बिहारी ने स्वयं अपने लिए चुनी थी बावजूद इसके भी उन्होंने ऐसे आकर्षक, मनोहारी तथा भावपूर्ण दृश्य अपने दोहे में शब्दों के माध्यम से चित्रित किये हैं।

(34)

"कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाइ।

जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ।।"[60]

परिशिष्ट : चित्र - 44

यह कथन विरह से उत्तप्त नायिका का अपनी सखी से है कि हे सखी!, कोई अब करोड़ यत्न भी मेरे शरीर की इस विरह से उत्पन्न अग्नि को दूर करने की कर ले पर अब यह अग्नि तन से इतनी आसानी से शांत नहीं होगी। मेरे भीतर की यह विरहाग्नि अब तो तब ही शांत होगी जब मेरे प्रियतम मुझसे ऐसे मिलेंगे जैसे मेरे भीतर की अग्नि की ज्वाला को शांत करने के लिए मैंने भीगे वस्त्र को अपने शरीर से लिपटा लिया हो। अर्थात् जिस प्रकार भीगे वस्त्र शरीर से लिपटने पर वस्त्र और शरीर एकमेक हो जाते हैं और शरीर को ठंडक भी महसूस होती है उसी प्रकार ह्रदय को शीतल करनेवाले मेरे प्रियतम को इस विरहाग्नि में मुझे तपने से बचाने के लिए मुझसे भीगे वस्त्र की तरह लिपटना ही होगा। विरह में उत्तप्त नायिका के काम भाव से भी पीड़ित नायिका का चित्रण बिहारी का यह दोहा करता है, जिसका आधार लेकर एक चित्र का भी निर्माण हुआ है। बिहारी के अनेक दोहे ऐसे हैं जिन्होंने रंगों के माध्यम से भी आकार पाया है, उन्हीं में से एक यह दोहा भी है। इस दोहे पर निर्मित चित्र में दो सखियाँ एक-दूसरे के गले में हाथ डाले एक-दूसरे से बातचीत करने की मुद्रा में खड़े होकर एक-दूसरे को देखती हुई चित्रित की गयी हैं। इनकी यह मुद्रा मिलन की आकांक्षा की ओर संकेत करती है। इन दो सखियों के मध्य होने वाले वार्तालाप का संकेत इस चित्र में ही ऊपर की ओर लिखा हुआ बिहारी का उक्त दोहा भी है। कामभावना जो बसंत में अधिक उत्तेजित कर विरहाग्नि को और अधिक बढ़ा देती है उसका संकेत इन सखियों के पीले वस्त्रों से दिया गया है। आभूषण से सुसज्जित एक सखी विरह में उपजे अपने भावों को दूसरी सखी के सामने प्रकट कर रही है। इसी चित्र में एक अन्य दोहा भी कवि बिहारी का है। जिसका भावार्थ तो विरह से ही जुड़ा है परंतु इसमें नायिका ने विरह में चांदनी को भी अंधकारमय माना गया है। जिसका कोई संकेत इस चित्र से नहीं प्राप्त होता। इसलिए ही उस दोहे को इस चित्र की व्याख्या में शामिल नहीं किया गया है। इस चित्र में जो भूमि बनाई गयी है वह काले रंग की तीन पट्टियों से सांप की

धारियों के समान बनाई गयी हैं। पीले रंग का पूरे चित्र में अधिक प्रयोग करते हुए पीले रंग के बॉर्डर के साथ लाल धारियाँ बनाकर इस चित्र को सजाया गया है। बिहारी के इस दोहे पर निर्मित यह चित्र अपनी चित्रांकन क्षमता के साथ बिहारी की चित्रांकन क्षमता का भी द्योतक है।

(35)

"छिप्यौ छबीलौ मुँहु लसै नीलैं अंचर -चीर।

मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर।।"[61]

परिशिष्ट : चित्र - 45

नायिका की सखी नायिका के रूप की शोभा का वर्णन करके नायक के मन में रुचि उपजाती हुई कहती है कि उसका अर्थात् नायिका का छबीला मुख आँचल के पट में छिपा हुआ ऐसी शोभा देता है , मानो चंद्रमा कालिंदी के नीले जल में झलमला कर दिख रहा हो अर्थात् जल में प्रतिबिंबित होकर मंद लहरियों के कारण झलमलाती आभा दे रहा हो। यहाँ नायिका का रूप सौन्दर्य चन्द्रमा के समान बिहारी द्वारा वर्णित हुआ है।

नायिका के इसी सौन्दर्य उपमा के आधार पर एक चित्रकार ने बसोहली शैली में एक चित्र बनाया है। इस चित्र में इस शैली की सभी विशेषताएँ निहित हैं। पीले रंग के हाशिये के भीतर लाल रंग की रेखा से बॉर्डर बनाया गया है जिसमें नीले आँचल को सिर पर डालकर हाथ से पकड़े नायिका चित्रित है। जिसका "ढालदार माथा, एक ही प्रवाहदार ऊंची नाक, कमल के समान नेत्र जो बहुत विशाल हैं।"[62] का चित्रांकन उसके रूप सौन्दर्य का आधार है। आभूषणों से सुसज्जित लाल घाघरे चोली पर नीले पट में छिपा हुआ उस नायिका का मुख अजब शोभा दे रहा है। नायिका के इस सौन्दर्यपूर्ण दृश्य को देखकर ऐसा ही लगता है जैसे नीले कालिंदी में चाँद रुपी मुख झिलमिला रहा हो। चित्रकार ने बिहारी के इस दोहे के शब्दचित्र को रंगचित्र में ढालकर इसकी चित्र क्षेत्र की सफलता को भी प्रमाणित कर दिया है। इस चित्र में आसमान और बादलों के चित्र में पतली नीली पट्टी पर वक्राकार सफ़ेद बादलों को निर्मित करना इस शैली की विशेष पहचान है। बिहारी की नायिका का ऐसा सौन्दर्यपूर्ण चित्रांकन बिहारी के शब्दचित्रांकन की क्षमता को भी प्रमाणित करता है।

(36)

"टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख- जोति।

लसति रसोई कैं बगर, जगरमगर दुति होति।।"[63]

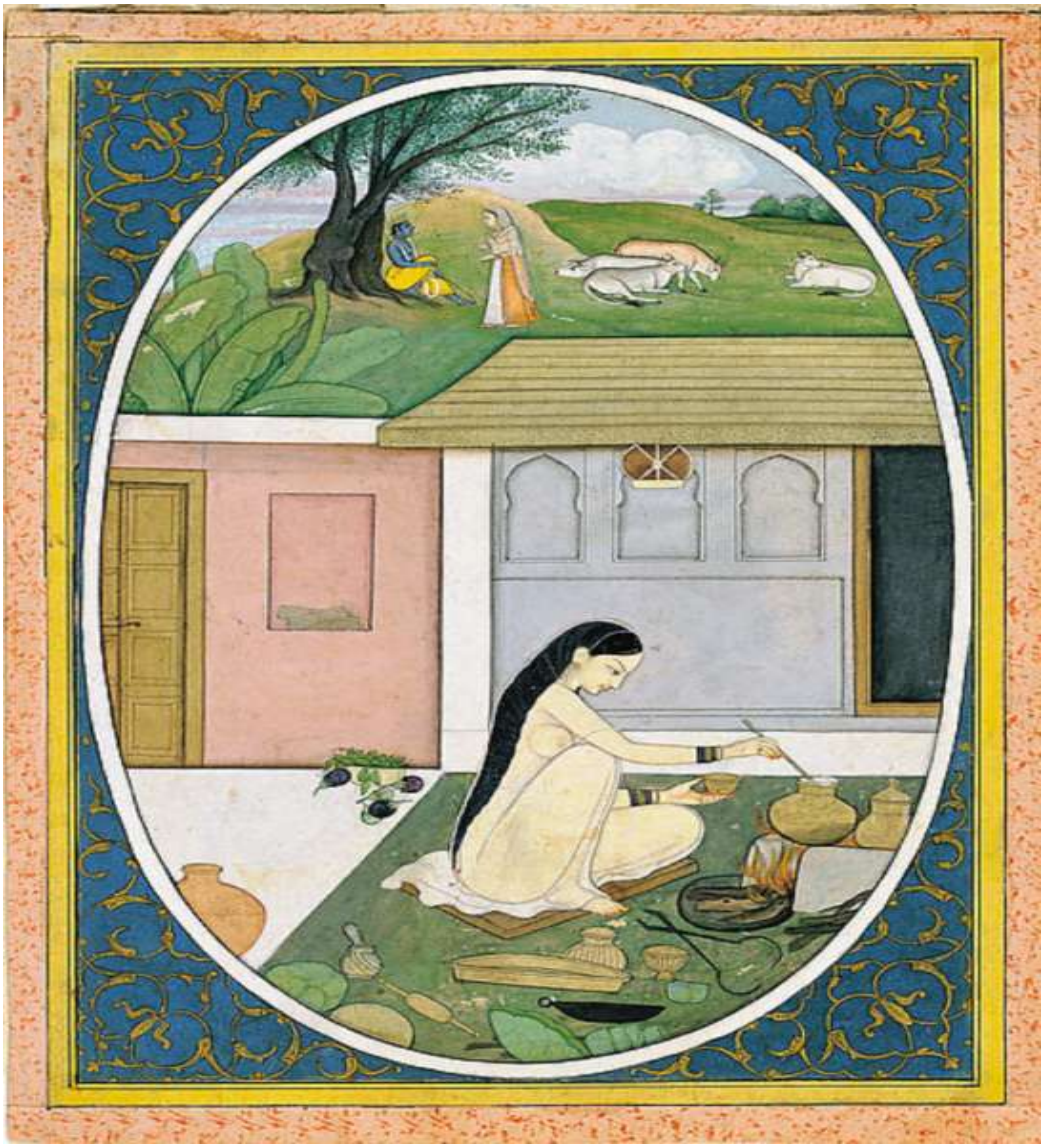

परिशिष्ट : चित्र - 46

बिहारी का यह दोहा रसोई में नायिका की शोभा को व्यक्त करता है। आर्य जाति के बड़े-बड़े घरों में यह परम्परा निभाई जाती है कि नयी बहु के आने पर उससे रसोई बनवाने के निमित्त कोई शुभ दिन तय किया जाता है और उस दिन नववधु नहाकर धोई हुई स्वच्छ तथा अपरस, धोती पहन कर रसोई में प्रवेश करती है तथा रसोई बनाती है। तभी से परिवार के सभी लोग उसके हाथ का बना हुआ भोजन करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे ही अवसर पर रसोई में भोजन बनाती हुई नायिका का वर्णन सखी नायक से उसको देख पाने के सही अवसर को बताने के निमित्त करती है, क्योंकि इस समय वह रसोई के कार्यो में फंसे होने के कारण जल्दी ही घूँघट भी नहीं कर पायेगी। इसलिए नायिका का वर्णन सखी नायक से करती है कि - इस समय तुरंत ही धोई हुई स्वच्छ धोती उसके तन पर शोभित है तथा उसके मुख की ज्योति अग्नि की चमक में और भी अधिक चटकीली हो रही है। इस रूप में नायिका की शोभा देखने योग्य है क्योंकि रसोईघर में नायिका की मुख ज्योति उसके वहां होने से जगमगा रही है। गृहिणी नायिका की शोभा का ऐसा वर्णन उन सभी आरोपों का उत्तर है जिन्होंने रीतिकालीन कवियों पर लोक और परिवार से परे जीवन के वर्णन का आरोप लगाया है।

नायिका की रसोई में काम करते हुए द्युति की शोभा का चित्रण गुलेर शैली में भी हुआ है जिसने बिहारी के इस शब्दचित्र को रंगचित्र में बदल दिया है। इस चित्र में नायिका सुंदर रंग की झीनी धोती धारण किये हुए रसोई में बैठी हुई भोजन बनाते हुए चित्रित है। रसोईघर के चित्रण में चित्रकार ने चूल्हा, बर्तन, अग्नि आदि के चित्रण के साथ-साथ अग्नि की चमक से नायिका के मुख की कांति पर पड़ने वाली चमक का भी इसमें चित्रण हुआ है। पार्श्व में सखी कृष्ण को यह सूचना देने भी पहुँची हुई चित्रित हुई है। इस पूरे चित्र में राधा की शोभा बिहारी के वर्णन के साथ ही इसमें प्रयुक्त रंगों से और अधिक प्रभावी बन गयी है। हाशिये नीले तथा पीले रंग का आलेखन युक्त है।

(37)

"पहुला हारु हियैं लसै, सन की बेंदी भाल।

राखति खेत खरे खरे खरे-उरोजनु बाल।।"[64]

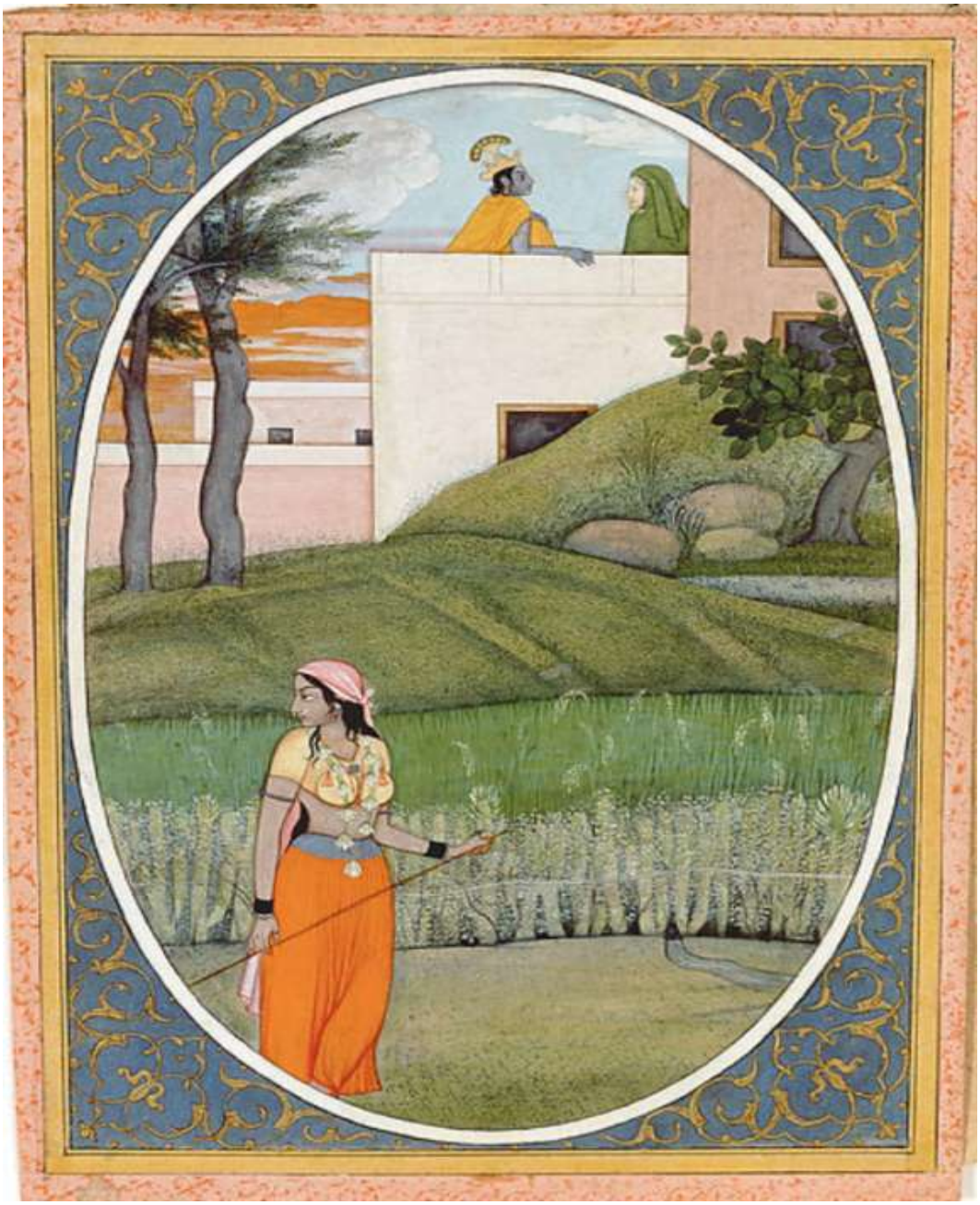

परिशिष्ट : चित्र - 47

इस दोहे में बिहारी ने गँवारी स्त्री द्वारा खेत का भलीभांति ध्यान रखते हुए उसकी स्वाभाविक शोभा का चित्र खींचा है जिसे नायक तिरछी नजरों से देखकर उस पर रीझ रहा है। भावार्थ यह है कि- उस गँवारी नायिका के हृदय पर मात्र 'पहुला' हार अर्थात् कुमुदनी के फूल की माला ही शोभित है और माथे पर सनई के फूल की पंखुड़ियों की बेंदी लगी हुई है। मात्र इन्हीं प्राकृतिक आभूषणों से भी यह गँवारी स्त्री इतनी सुंदर और आकर्षक लग रही है कि नायक का ध्यान अपनी और खींचे हुए है। इस बाला में यह विशेष गुण है कि अपने खरे उरोजो के साथ खेतों को भी खरा अर्थात् अच्छी तरह राखती है।

यहाँ ग्रामीण स्त्री का चित्रण बिहारी ने बड़े मनोयोग के साथ साधारण वस्तुओं के प्रयोग से खींचा है जिसे गुलेर शैली के ही एक चित्रकार ने आकार देकर पृष्ठ पर उतार दिया है। इस चित्र में लाल, पीले तथा नीले हाशिये के भीतर खरे उरोजो वाली ग्रामीण स्त्री कुमुदिनी की माला पहने, हाथ में छड़ी लिए अपने खेतों को निहार कर उनकी देखभाल कर रही है तथा पीछे किसी अटारी पर से नायक किसी अन्य के साथ बात करते हुए तिरछी चितवन से उसके सौन्दर्य को निहार रहा है। इस चित्र में प्रकृति अपने स्वाभाविक रूप में सुंदर तथा श्रेष्ठ बन गयी है जिसमें ग्रामीण स्त्री के धूप में खड़े रहने के कारण उसमें पारंपरिक गौर वर्ण को ही न थोपकर उसे सामान्य स्त्री के रूप में कर्मशील रूप में दिखाया गया है और कर्म के सौन्दर्य का प्रतिपादन इस पूरे दोहे में बिहारी द्वारा शब्दों से खींचा गया चित्र और चित्रकार के द्वारा खींचे गये रंगचित्र दोनों ही यही भावबोध संप्रेषित करते हैं।

बिहारी के कुछ काव्यचित्र ऐसे भी हैं जो चित्रांकन की दृष्टि से उत्तम और महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु उन दोहों पर कोई भी चित्र प्राप्य नहीं है और यदि उन पर कोई चित्र निर्माण हुआ भी हो तो वह सीमित समयावधि के कारण मेरी जानकारी में नहीं आ पाये हैं। ऐसे ही बिहारी की चित्रांकन क्षमता को उजागर करने वाले कुछ दोहों का उल्लेख निम्नवत है-

(1)

"नासा मोरि , नचाइ जे करी ककी की सौंह।

काँटे सी कसकैं ति हिय गड़ी कँटीली भौंह।।"[65]

कवि बिहारी का यह दोहा नायिका का चेष्टागत वर्णन है। जिसके भावानुसार नायक ने नायिका के साथ कोई ढिठाई की है जो नायिका को समयानुसार अच्छी नहीं लगी, इसके लिए वह नायक के सामने नाक को थोडा मोड़कर और भौंहो को नचाकर काका की सौंह भरते हुए यह भाव प्रेषित करती है कि मुझे तुम्हारी यह ढिठाई अच्छी नहीं लगी है परन्तु भौंहों को नचाते हुए यह भाव भी संकेत रूप में व्यक्त कर देती है कि यह अनुराग उसे प्रिय भी है। जिससे नायिका की वह बांकी चितवन नायक के भीतर अनुराग रूप में काँटे की तरह कसकती रहकर उसको मिलन के लिए सालती भी रहती है।

बिहारी के उक्त दोहे में नायिका का नाक को मोड़ना, भौंहो को नचाना तथा सौंह भरना बड़ी ही सुंदर अभिव्यक्ति बन पड़ी है। इसे बिहारी ने कुछ शब्दों के माध्यम से ही चित्र रूप में उपस्थित कर दिया है। यह चित्र ऐसा है जो सिर्फ मानस मन में ही नहीं यदि चाहें तो पृष्ठ पर रंगों से भी उकेरा जा सकता है।

(2)

"जज्यौं उझकि झाँपति बदनु, झुकति बिहँसी सतराइ।

तत्यौं गुलालमुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ।।"[66]

इस दोहे में जो वर्णन है वह फाग का अवसर है। इसमें नायक नायिका पर गुलाल फेंकने के लिए गुलाल भरी मुट्ठी उसके ऊपर ताने हुए है। नायिका आँखों में गुलाल पड़ जाने के भय से कभी घूँघट में मुँह ढाँपती है, कभी झुक भी जाती है, फिर हँस भी देती है और आखिर में खिझला जाती है। नायक को उसकी यह चेष्टायें इतनी सुखद लगती हैं कि वह उसकी यह गुलाल से खुद को बचाने की चेष्टाएँ बार-बार करते हुए देखने के निमित्त झूठे ही गुलाल भरी मुट्ठी को उस पर ताने रहता है। डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में "यहाँ चेष्टा का सुख कितना काम्य हो उठा है।"[67] नायक-नायिका की इन मनोहारी चेष्टाओं को कवि बिहारी ने अपने शब्दों के माध्यम से मानस चित्र रूप में जीवंत बना दिया है जिसके पठन मात्र से ही नेत्रों के समक्ष होली के दिवस में नायक नायिका पर गुलाल डालने की चेष्टा करता हुआ तथा नायिका की उससे बचने के प्रयास में चेष्टाएँ करने से उनका प्रेम-विनोद चित्रित हो जाता है। इसे यदि कोई चित्रकार रंग चित्र से फलक पर दृश्यमान करना चाहे तो भी इन चेष्टागत संकेतो से सहज ही कर पाना संभव है क्योंकि उझकना, ढाँपना, झुकना और हँसना तथा गुलालमुट्ठी को ताने हुए नायक का चित्रण आदि बिहारी के इन स्पष्ट संकेतो से चित्र बन जायेगा। इस दोहे में बिहारी ने जितनी चेष्टाएँ, क्रियाएँ तथा भंगिमाएँ एक साथ, एक ही दोहे में उभारी है उसमें बिहारी के कवि रूप के साथ उनका चित्रकार रूप भी उजागर हो गया है।

(3)

"हँसी ओठनु-बिच करु उचै, कियैं निचौहैं नैन।

खरैं अरैं प्रिय कैं प्रिया लगी बिरी मुख दैन।।"[68]

बिहारी द्वारा रचित इस दोहे में विश्रब्धनवोढ़ा नायिका का वर्णन है जो अपने प्रियतम पर अब थोड़ा अधिक विश्वास करने लगी है। इसी कारणवश वह नायक को पान खिलाने लगी है। पान खिलते समय नायिका का चेष्टागत वर्णन इस दोहे में हुआ है। जिसका भावार्थ है- प्रियतम के हठ करने पर नायिका अपने होंठो में ही हँसकर, हाथ ऊँचे और नेत्रों को नीचे की ओर शरमाने की मुद्रा में रखते हुए उसके मुख में पान की बीड़ी दे देती है। एक ओर जहाँ "संकोच, लज्जा और विश्वास का संगम चित्र को आत्यान्तिक ऐन्द्रिय मनोरमता प्रदान करता है"[69] वहीं दूसरी ओर इसमें नायिका की भावभरी चेष्टाएँ और क्रियाएँ मनमोहक छवि के साथ चित्र रूप में उभर आती हैं। होंठो के भीतर ही हँसना, हाथों को ऊँचा करना तथा नेत्रों को नीचे कर शरमाना और ऐसे ही प्रियतम के मुँह में पान की बीड़ी दे देना, नायिका की इन सभी चेष्टाएँ तथा भाव-भंगिमाओं का चित्रण बिहारी ने शब्दों के माध्यम से बड़े मनोयोग से व्यक्त कर दिया है। बिहारी रचित यह दोहा उनकी चित्रांकन क्षमता का अन्यतम उदाहरण है।

(4)

"बिहँसति सकुचति सी, दिऐं कुच- आँचर-बिच बाँह।

भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँह।।"[70]

स्नान के उपरांत सरोवर से निकलकर तट की ओर जाती हुई नायिका की मनोहारी चेष्टाओं और भाव-भंगिमाओं का चित्रांकन इस दोहे में हुआ है। इसका भावार्थ यह है कि

नायिका सरोवर से स्नान करके निकली है जिससे उसके वस्त्र गीले होने के कारण शरीर से चिपक गये हैं। लज्जावश वह अपने भीगे वस्त्रों में थोड़े अधिक परिलक्षित होते उरोजो के उभार को छिपाने के लिए वस्त्रों में ही अपनी बाँहों से उसे ढाँप कर छुपाने का प्रयास करती हुई मुस्काती और संकुचाती हुई सी भीगे वस्त्रों में तट की ओर चली जा रही है। बिहारी द्वारा खींचे गये इस दृश्य में नायिका का मुस्काना, संकुचित होना, इसी संकोच में भीगे वस्त्रों में उरोजों को बाँहों से ढाँपने का प्रयास करना और इन्हीं सब भावों से उसके तट की ओर जाने में बिहारी विविध चेष्टाओं द्वारा मनमोहक चित्र खींच देते हैं, "कभी-कभी कविवर बिहारी लाल ने गत्यात्मक बिम्बों की ऐसी मादक रेखाएँ एक साथ संयोजित की हैं जिनसे रागात्मकता का सहज रंग स्वत: फैल गया है"[71] इन सभी चेष्टाओं और भंगिमाओं को शब्दों में उतारकर बिहारी एक दृश्य रूप में नेत्रों के समक्ष उपस्थित कर देते हैं जिसे आधार स्वरुप लेकर वास्तविक रंगचित्र का निर्माण सरल तथा संभव हो गया है। मुस्कुराहट में सकुचाहट तथा आँचल के बीच में बाहें डालकर भीगे कपड़ों में सरोवर से जाती हुई नायिका का सफल तथा सुंदर चित्र इतने संकेतो के माध्यम से खींचा अवश्य जा सकता है पर आश्चर्य है कि अभी तक इस दोहे पर शायद ही कोई ऐसे चित्र निर्माण हुआ हो जिसमें नायिका के इस अवस्था में विविध भाव तथा भंगिमा एक साथ उसके मुख पर उभर आयें हों।

(5)

"सुनी पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियैं हीं पीठि।

चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजी सी डीठि।।"[72]

कविवर बिहारी के इस दोहे में चित्रांकन का कई भावरूपों और क्रियाओं को एक ही समय में दो पंक्तियों के शब्द चित्र लाकर एक विशिष्ट सोपान निर्मित होता है। नायक को अकस्मात आया देख नायिका ने पीठ दिए ही नायक की ओर मुड़कर ज्यों ही देखा तो आश्चर्यचकित हो गयी। इस आश्चर्यचकित भाव में वह अपने शरीर को छुपाने के निमित्त पानी में ही झुकी तथा गीले वस्त्रों को ऐसे ही लपेट स्वाभाविक ही सकुचा गयी। स्वयं को किसी और के देखे न जाने का भय भी ऐसा ही है जो नायिका को डरा रहा है परन्तु अंत में नायक को अपनी ओर देखता पाकर वह लजा भी गयी और इसी लजीली दृष्टि में दोनों एक-दूसरे को मुस्कराकर अपने प्रेम-प्रदर्शन का सांकेतिक भाव भी संकेतित कर रहे हैं।

इस दोहे में सारी दृश्यावली एक ही पंक्ति में बिहारी प्रकट कर देते है। इस पूरे दृश्य में नहाते हुए ही पीठ देना, चकित होना, झुकना, संकुचना, डरना, हँसना तथा लजाना एक साथ इतने सारे भाव नायिका के मुख पर बिहारी दिखा देते हैं। यह पूरा भावबोध एक चलचित्र की तरह नेत्रों के सामने से डोल जाता है जो कि बिहारी की विशेषता है। "बिहारी के स्नान चित्र उनकी रेखांकन-कला के सर्वोच्च बिन्दुओं को दिग्दर्शित करते हैं। मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण, दृश्य का यथातथ्य प्रस्तुतिकरण, इन चित्रों की विशेषता है।"[73] परन्तु आश्चर्य है कि बिहारी की इस विशेषता पर बहुत ही कम ध्यान आलोचकों का गया है।

(6)

"कंज-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।

कच-अँगुरी-बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार।।"[74]

नायिका की वैदिग्ध्य पूर्ण क्रियाओं का वर्णन सखी करती है जिसका भावार्थ यह है कि वह कंज नयनों को काजल से रंग कर बैठी नायिका स्नान कर आई है और बैठकर अपने बाल सुलझा रही है। इसी क्रम में वह व्याज से अपने बालों तथा उँगलियों के बीच से दृष्टि देकर अपने प्रियतम को देख रही है।

बिहारी के इस दोहे के माध्यम से नायिका के चातुर्य तथा वैदग्ध्य पूर्ण क्रियाओं का जो शब्दचित्रण किया गया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। कंचन के समान नेत्र वाली नायिका काजल से लगे नेत्र किये हुए, बैठकर बाल सुलझा रही है यह बालों के बीच अंगुरी देते हुए उसके बीच में से दृष्टि देते हुए नंदकुमार को देख रही है। यह पूरा दृश्य एक चित्र है जिसे पृष्ठ पर रंगों के माध्यम से उतारने की आवश्यकता है। बिहारी के इसी चित्र खींचने वाली विशेषता पर स्वीकृति गुरुदेव नारायण भी देते हैं, "बिहारी अपने दोहों में रूप का चित्र सा खींच देते हैं।"[75]

(7)

कर लै चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ , भुज भेटि।

लहि पाती पिय की लखति , बाँचति धरति समेटि।।[76]

इस दोहे में बिहारी ने नायिका का वर्णन किया है जो प्रिय के दूर चले जाने से उनकी बाट जोह रही है। ऐसे में प्रिय का पत्र आने पर वह ख़ुशी तथा भावोद्वेलन में जैसी मनमोहक और भावपूर्ण प्रेमाविभोर करने वाली क्रियाएँ और अनुरंजक चेष्टाएँ करती है वह इस दोहे में महत्त्वपूर्ण है।

नायिका हाथों में पत्र को लिए पहले तो हर्षातिरेक में उसे चूमती है और फिर प्रेम के प्रतीक पत्र को प्रिय के एहसास स्वरुप सिर पर लगाती है, फिर पत्र को ह्रदय से लगाकर शीतलता का अनुभव करती है। पत्र को ही प्रियतम मिलन का भाव मानकर वह उसे अपनी भुजाओं में भर लेती है। सिर्फ इतना ही नहीं वह नायिका प्रेम में विह्वल होकर कभी उस पत्र को लेकर देखती है, कभी पढ़ती है और फिर कभीं अपनी धरोहर रूप में उसे सम्भाल कर रख देती है। पत्र प्राप्ति पर नायिका में यह उत्साह मनमोहक है जिसे बिहारी ने बहुत स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है। इतने बड़े और गहन भाव-बोध को बिहारी ने बड़ी ही सहजता से काव्य के साथ काव्यचित्र के रूप में भी उभार दिया है।

(8)

"त्रिबली, नाभि दिखाइ, कर सिर ढकि, सकुचि, समाहि।

गली , अलि की ओट कै , चली भली बिधि चाहि।।"[77]

नायक को देख कर नायिका अपना अनुराग उस पर प्रकट करने के लिए जो मनोहारी चेष्टाएँ करती है, बिहारी द्वारा रचित इस दोहे में उन्हीं का वर्णन है जो नायक का स्वगत कथन प्रतीत होता है- (भावार्थ) वह मेरा उससे सामना होने पर संकुचित होकर हाथों से सिर ढंकने का प्रयत्न करते हुए हाथ उठाकर इस क्रिया से अपनी त्रिबली और नाभि मुझे दिखाकर सखी की ओट लेते हुए भली प्रकार से मुझे देखकर गली में चली गयी। इस दोहे में नायिका द्वारा संकुचाना, हाथ उठाना, सिर ढंकने का प्रयास करना, सखी की ओट लेकर नायक को निहारना और गली में चले जाना, इतनी सारी क्रियागत चेष्टाएँ एक शब्दचित्र के रूप में सम्पूर्ण दृश्य

हमारे नेत्रों के समक्ष उपस्थित कर देती हैं। इस दोहे के आधार पर चित्रांकन के अर्थ में यदि विचारा जाये तो, "नारी मनोविज्ञान का कवि ने गहरा परिचय दिया है"[78] तथा एक ही समय में बिहारी ने नायिका की सभी अनुराग व्यंजक चेष्टाएँ पाठक के सामने उभार दी हैं जिससे मानस बिम्ब में निर्मित चित्र के आधार पर यदि कोई चित्रकार चित्र निर्माण करना चाहे तो वह अवश्य सरलता तथा सफलतापूर्वक कर सकता है। ऐसी ही क्रियात्मक, चेष्टागत तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं को एक ही जगह पर एक दृश्य में उभार देना बिहारी की विशेषता है।

(9)

"झटकि चढ़ति उतरति अटा, नैंक न थाकति देह।

भई रहति नट कौ बटा अटकी नागर-नेह।।"[79]

बिहारी द्वारा रचित सतसई के इस दोहे में नायिका द्वारा नायक को बार-बार देखने के निमित्त अटारी पर चढ़ना और उतरते समय की उसकी भाव-भंगिमाओं का वर्णन नट की चकई के सादृश्य से हुआ है जिसे सखी के माध्यम से कवि प्रेषित करते हैं- (भावार्थ) वह झपटकर फुर्ती से अटारी पर कभी चढ़ती है और कभी उतरती है अर्थात् फिर-फिर चढ़-उतर रही है। इस कर्म में उसकी वह देह किंचितमात्र भी थकती नहीं है और न ही ठहरती है। नायिका तो चतुर नायक के स्नेह रुपी डोरे में अटकी हुई नट की चकई हुई सी बनी रहती है। अर्थात् उस नायिका का नायक पर इतना अनुराग है कि वह नायक के स्नेह में ही बंधी रहना चाहती है।

नायक के प्रति नायिका के नेत्रों में अनुराग तथा उसमें उसका अटारी पर बार-बार चढ़ना, उतरना आदि चित्रांकन की दृष्टि से देखा जाये तो इसका चित्रांकन पूर्णत: संभव है। सादृश्य रूप में नट की चकई को भी चित्र में ही एक तरफ इंगित करके चित्रित किया जा सकता है और नायक को सखी द्वारा नायिका की यह दशा बताते हुए भी चित्र के एक भाग में चित्रित किया जा सकता है। बस इसके लिए आवश्यकता है उसके चित्रांकन की जो अभी तक नहीं हो पाया है परन्तु भविष्य में इस और दृष्टिपात करने की कोशिशें चित्रकारों द्वारा शायद विचारणीय हो जाएँ।

(10)

"दृग मिहचत मृग-लोचनी भरयौ, उलटि भुज, बाथ।

जानि गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ।।"[80]

कविवर बिहारी का यह दोहा नायक-नायिका के प्रेम और विनोद को शब्दांकित करता है। नायक खेल-खेल में पीछे से आकर नायिका के मृग समान नेत्रों को अपने हाथों से ढाँप देता है परन्तु नायिका उसे उसके स्पर्श से ही पहचान लेती है। अपने इस अनुराग को व्यक्त करते हुए उस नायिका ने नायक को बिना यह दिखाए की वह जानती है कि पीछे नायक है, अपनी भुजाओं को उलटकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया है अर्थात् नायक के गले लग जाती है। इस दोहे में दृग मिहचना, भुजाओं को उलटना, बांहों में भरना आदि नायक-नायिका की इन सभी क्रियागत प्रेम-विनोद भरी चेष्टाओं को कविवर बिहारी ने दृश्य चित्र में शब्दों के माध्यम से उकेर दिया है। इससे मानस में निर्मित चित्र के आधार पर रंगचित्र को कागज पर एक ही चित्र में दो दृश्यों की उपस्थिति दिखाकर उतारा जा सकता है। पहले दृश्य में नायिका के दृग मिहचे हुए नायक तथा दूसरे दृश्य में भुजाओं को उलटकर नायक को बाँहों में भरते हुई

अवस्था में नायिका का चित्रण हो सकता है। अभी तक यह कार्य हुआ नहीं है क्योंकि इसका कोई चित्र हमें प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध नहीं हो पाया है। उक्त दोहे पर भविष्य में चित्र-निर्माण की संभावनाएँ इसलिये अभी भी शेष हैं।

(11)

"भौंह उँचे, आँचरु उलटि, मौरि मोरि, मुहु मोरि।

नीठि नीठि भीतर गई, दीठ दीठि सौं जोरि।।"[81]

नायिका ने अपने द्वार से नायक को देखकर जो चेष्टाएँ की हैं, उन पर नायक रीझ गया है। नायिका की चेष्टाओं को नायक सखी के सामने वर्णित करता है कि- (भावार्थ) वह नायिका अपनी भौंहों को ऊँचा कर के, आँचल किसी व्याज से उलटकर और फिर मुंह को मोड़कर अर्थात् पीछे की ओर फिरकर, दृष्टि से दृष्टि मिलकर भीतर चली गयी। इस दोहे में बिहारी नायिका की विविध भंगिमाओं यथा- भौंह ऊँचा करना, आँचल उलटना, मुँह को मोड़कर पीछे की ओर फिर-फिरकर देखते हुए जाना आदि को एक ही दोहे में इस प्रकार उपस्थित कर देते हैं कि एक दृश्य नेत्रों के समक्ष आ जाना स्वाभाविक ही है और इस दृश्य को अनेकों क्रियाओं और भावों, भंगिमाओं के द्वारा जीवित कर देने के लिए ही बिहारी जाने जाते हैं। परन्तु इसको कागज पर रंग के माध्यम से भी उतारा जा सकता है। इस दृष्टि से अभी भी बिहारी की चित्रात्मकता विचारणीय है।

(12)

"सुरँगु महावरु सौति- पग निरखि रही अनखाइ।

पिय-अँगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ।।"[82]

बिहारी का यह दोहा संभोग-दुखिता नायिका की अवस्था का चित्रण है जिससे जुड़ी घटना का वृत्तांत सखी सखी से कहती है क्योंकिं, "प्रत्येक नायिका के साथ दूतियों, सखियों और सेविकाओं की सहभागिता है जो नायक से दूर रहने की बेचैनी में ली गयी उसकी हर सांस की राज़दार हैं और नायक के साथ उसके द्वारा बिताये गये हर पल की लेखाकार"[83] सखी का कथन है - (भावार्थ) अपनी सौतन के पाँव में सुंदर और सुघड़ रूप से लगा हुआ महावर देखकर नायिका अनखा रही है अर्थात् ईर्ष्या करने लगती है परन्तु जब वह अपने प्रियतम की अँगुली में महावर की लाली देखती है तो उसके हृदय में भाँति-भाँति की अग्नि उठ जाती है। इसका कारण है कि क्योंकि उसे अंदाजा हो जाता है कि सौत के पाँव में लगी यह सुघर महावर खुद मेरे ही पति ने उसे लगाई है तो ईर्ष्या का भाव प्रियतम के धोखे से खंड-खंड हो जाता है। इस दोहे में नायिका के भीतर जो ईर्ष्या, जो पीड़ा और वेदना उपजी है उसे शब्दों के माध्यम से चित्र के रूप में बिहारी अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं।

(13)

"पीठि दिये हीं, नैंक मुरी, कर घुँघट-पटु टारि।

भरि, गुलाब की मुठि सौं, गई मूठि सी मारि।।"[84]

यह दोहा नायिका का चेष्टागत वर्णन है जो बिहारी ने शब्दचित्र के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। नायक सखी से नायिका के होली खेलने पर उसके साथ होली खेलने में होने वाले प्रेम व्यापार और उसके एहसास का वर्णन करता है कि (भावार्थ) नायिका ने पीठ दिए ही थोड़ा सा मुड़कर और अपने हाथ से घूँघट के पट को डालते हुए अपनी गुलाल से भरी मुट्ठी से मेरे ऊपर मूठ मार दी जिसमें इस गुलाल भरी मुट्ठी के मूठ से मेरे अर्थात् नायक के हृदय में जो अनुराग उत्पन्न हुआ है वह ऐसा है जैसे वह उसके हृदय पर भी अपने प्रेम और

अनुराग का आघात कर गयी हो। उक्त दोहे में पीठ देकर नेंक मुड़ना और हाथ से घूँघट के पट को टालते हुए गुलाल से भरी मुट्ठी को नायक के ऊपर मारना आदि को बिहारी ने इस नायिका की पूरी मुद्राओं, विभिन्न क्रियाओं और चेष्टाओं के साथ शब्दचित्र में जीवंत कर दिया है जिसे रंग के माध्यम से चित्र रूप में पृष्ठ पर उतारकर प्राणों का संचार किया जा सकता है बशर्ते दोहों की इस चित्रांकन क्षमता को समझा जाये तो ही। इस पूरे दृश्य को एक ही चित्र में बहुत ही सहजता से बिहारी के इन सभी क्रियागत, चेष्टागत तथा मुद्रागत संकेतों के द्वारा चित्रित किया जा सकता है।

इस प्रकार यदि समग्रता में देखा जाये तो काव्य और चित्र का सम्बन्ध मानव मन की कोमलतम अभिव्यक्तियों से है। इसमें विलक्षणता यह है कि इस अभिव्यक्ति को काव्यकार शब्दों के माध्यम से चित्र रूप में भी उतार सकता है और चित्रकार रंगों के माध्यम से काव्य रूप में भी। काव्य और चित्र का यह सम्बन्ध अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान स्वीकार करते आये हैं यथा- रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद, होरेस, सिमोनीडिज आदि सभी के लिए सच्ची कविता वही है जो एक चित्र बना दे। काव्य में चित्र बनाने वाली ऐसी ही कविता कवि बिहारी ने भी की है जिन्होंने अपने काव्य में भावों का भंगिमाओं, क्रियाओं तथा चेष्टागत वर्णन करके चित्रों को पाठक के समक्ष उपस्थित कर दिया है। 'कल्पना की समाहारशक्ति' और 'भाषा की समासशक्ति' का सहारा लेकर बिहारी ने घटनापूर्ण जो चित्र अपने दोहा छंद में खींचे है उससे पूरा दृश्य चित्र रूप में नेत्रों के समक्ष स्वत: ही आने लगता है। जिसे विभिन्न शैली के मध्यकालीन तथा आधुनिक चित्रकारों ने काष्ठ, कपड़े तथा कागज पर रंगों के माध्यम से उतारकर बिहारी के काव्य में चित्रांकन की विशेषता को प्रमाणित कर दिया है। शब्दों में

रेखाओं, क्रियाओं, भंगिमाओं और चेष्टाओं का ऐसा वर्णन ही कविवर बिहारी को चित्रकार बना देता है, साथ ही उनके काव्य में जीवंतता का भी संचार करता है, "जिस प्रकार कुशल चितेरे के चित्र की रेखायें तथा रंग बोलने लगते हैं ठीक उसी प्रकार बिहारी का प्रत्येक अक्षर बोलता प्रतीत होता है।"[85] कवि बिहारी के काव्य की यह सजीवता यदा-कदा लगभग सभी टीकाकारों, व्याख्याकारों, आलोचकों ने स्वीकार की है परंतु उस पर स्वतंत्र रूप से कोई विचार किसी आलोचक का नहीं रहा है।

बिहारी चित्रमयता और चित्रकला की संभावना को अपनी कविताई में सजाने सँवारने वाले दुर्लभतम कवियों में से हैं। मूर्त को अमूर्तन में ले जाने को रहस्यवादी वितान कह कर उसकी विविध कोटियों की साहित्य में विवेचना और प्रशंसा की गयी है। इनसे अलग बिहारी अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करने वाले कवि हैं । बिहारी ने अनेक आकर्षक चित्रों, मुद्राओं, भावों एवं भंगिमाओं को आकार के साथ प्राण भी दिया है। यही कारण है कि मध्यकाल में बिहारी के दोहों में छिपी चित्रांकन क्षमता को पहचान कर अनेक राजाओं तथा चित्रकारों ने अपने क्षेत्र विशेष शैली यथा- काँगड़ा, जयपुर, मेवाड़, बसोहली, गुलेर आदि को लेकर कपड़े तथा कागज पर रंगों के माध्यम से उतरवाया या उतारा। इसके बाद भी अभी तक बिहारी की यह चित्रांकन की विशिष्टता वर्तमान समय में बहुत अधिक प्रकाश में नहीं आ पाई है। जिसके कारण बिहारी के कई चित्रांकन क्षमता के द्योतक दोहे रंगों से साकार नहीं हो पायें हैं, परन्तु इससे बिहारी में चित्रांकन का महत्त्व कहीं भी कम नहीं होता क्योंकि कवि बिहारी मध्यकालीन कवियों में सबसे अधिक चर्चित रहने वाले कवियों में से एक हैं। इसमें बिहारी का काव्य कर्म क्षेत्र ही उनकी इस सम्पूर्ण कीर्ति का आधार है जो लम्बे समय से सूर्य के प्रकाश की तरह विद्वानों, टीकाकारों, आलोचकों और शोधार्थियों की दृष्टि में नित नये रूप में उद्दीप्त होता रहा है। अंत में सिर्फ इतना ही कह सकते हैं, कि बिहारी के काव्य में चित्रांकन के

विविध आयाम मिलते हैं और जिनमें चित्रांकन का पूर्ण रूप से समावेश हुआ है। बिहारी के काव्य में चित्रांकन ऐसे ही है, जैसे- 'हाथ कंगन को आरसी क्या?' और 'प्रत्यक्षम् किं प्रमाणम्'।

सन्दर्भ :

1. दुबे, श्यामसुंदर; संस्कृति, समाज और संवेदना; ग्रंथलोक प्रकाशन; नयी दिल्ली; संस्करण: 2004; पृष्ठ. 99
2. शर्मा, हरवंशलाल; शास्त्री, परमानन्द; बिहारी और उनका साहित्य; भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ; पृष्ठ. 7
3. नारायण, गुरुदेव; बिहारी: एक नव्यबोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 44
4. लाल, किशोरी; बिहारी काव्य की उपलब्धियाँ; साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड, के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद; संस्करण: 1975; पृष्ठ. 166
5. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 312; दोहा संख्या- 699
6. वही; पृष्ठ. 290; दोहा संख्या- 648
7. वही; पृष्ठ. 21; दोहा संख्या- 1
8. वही; पृष्ठ. 181; दोहा संख्या- 385
9. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 182

10. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 121

11. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2008; पृष्ठ. 181; दोहा संख्या- 384

12. सिंह, बच्चन; बिहारी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फ़िरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली- 110001; संस्करण: 1982; पृष्ठ. 23

13. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 227

14. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 14

15. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 195; दोहा संख्या- 420

16. वही; पृष्ठ. 114; दोहा संख्या- 217

17. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 227

18. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 40; दोहा संख्या- 32
19. प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य; दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक- 124001; पृष्ठ. 409-410
20. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 164; दोहा संख्या- 339
21. वही; पृष्ठ. 41; दोहा संख्या- 35
22. वही; पृष्ठ. 238; दोहा संख्या- 516
23. वही; पृष्ठ. 277; दोहा संख्या- 611
24. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 272
25. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 307; दोहा संख्या- 687
26. वही; पृष्ठ. 123; दोहा संख्या- 241
27. वही; पृष्ठ. 226; दोहा संख्या- 489
28. वही; पृष्ठ. 104; दोहा संख्या- 190
29. वही; पृष्ठ. 204; दोहा संख्या- 440

30.वही; पृष्ठ. 150; दोहा संख्या- 301

31.सिंह, दूधनाथ; लेख; रीतिकाव्य मूल्यांकन के नये आयाम; सं. प्रभाकर सिंह; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 226

32.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 86; दोहा संख्या- 143

33.वही; पृष्ठ. 27; दोहा संख्या- 6

34.वही; पृष्ठ. 65; दोहा संख्या- 95

35.वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 227

36.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 90; दोहा संख्या- 152

37.नगेन्द्र; देव और उनकी कविता; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली; पृष्ठ. 177.

38.'रत्नाकर', जगन्नाथ दास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 126; दोहा संख्या- 249

39.वही; पृष्ठ. 91; दोहा संख्या- 155

40.वही; पृष्ठ. 305; दोहा संख्या- 683

41.जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ.15

42.शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 114

43.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 300; दोहा संख्या- 690

44.वही; पृष्ठ. 158; दोहा संख्या- 322

45.वही; पृष्ठ. 301; दोहा संख्या- 675

46.वही; पृष्ठ. 284; दोहा संख्या- 632

47.वही; पृष्ठ. 218; दोहा संख्या- 472

48.सिंह, दूधनाथ; लेख; रीतिकाव्य मूल्यांकन के नये आयाम; सं. प्रभाकर सिंह; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 225

49.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 135; दोहा संख्या- 268

50.वही; पृष्ठ. 171; दोहा संख्या- 356

51.वही; पृष्ठ. 239; दोहा संख्या- 522

52.वही; पृष्ठ. 29; दोहा संख्या- 12

53. ‘रत्नाकर’, जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 29
54. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 247-248
55. वही; पृष्ठ. 249
56. ‘रत्नाकर’, जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 312; दोहा संख्या- 698
57. वही; पृष्ठ. 238; दोहा संख्या- 517
58. वही; पृष्ठ. 108; दोहा संख्या- 201
59. वही; पृष्ठ. 43; दोहा संख्या- 40
60. वही; पृष्ठ. 297; दोहा संख्या- 667
61. वही; पृष्ठ. 246; दोहा संख्या- 538
62. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 121
63. ‘रत्नाकर’, जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 221; दोहा संख्या- 477
64. वही; पृष्ठ. 126; दोहा संख्या- 248

65.वही; पृष्ठ. 189; दोहा संख्या- 406

66.वही; पृष्ठ. 231; दोहा संख्या- 503

67.सिंह, बच्चन; बिहारी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फ़िरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली - 110001; संस्करण: 1982; पृष्ठ. 19

68.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008 ; पृष्ठ. 282; दोहा संख्या- 627.

69.सिंह, बच्चन; बिहारी का नया मूल्यांकन; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 42

70.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 310; दोहा संख्या- 693

71.किशोरीलाल; बिहारी काव्य की उपलब्धियाँ; साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड, के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद; संस्करण: 1975; पृष्ठ. 168.

72.'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 281; दोहा संख्या- 623

73.दुबे, श्यामसुंदर; संस्कृति, समाज और संवेदना; ग्रंथलोक प्रकाशन; नयी दिल्ली; संस्करण: 2004; पृष्ठ. 100

74. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 59; दोहा संख्या- 78

75. नारायण, गुरुदेव; बिहारी: एक नव्यबोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 50

76. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 307; दोहा संख्या- 687

77. वही; पृष्ठ. 62; दोहा संख्या- 88

78. प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य; दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक- 124001; पृष्ठ. 428

79. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 105; दोहा संख्या- 194.

80. वही; पृष्ठ.107; दोहा संख्या- 200

81. वही; पृष्ठ.123; दोहा संख्या- 242

82. वही; पृष्ठ.143; दोहा संख्या- 287

83. शुक्ल, वागीश (लेख); झा, विमल (सं.); पुस्तक - वार्ता; महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा- 442001; अंक- मई- जून, 2017

84. वही; पृष्ठ. 168; दोहा संख्या- 350

85.दुबे, श्यामसुंदर; बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन; शब्द और शब्द, डी 118, अशोक विहार, दिल्ली- 110052; संस्करण : प्रथम; पृष्ठ. 108

उपसंहार

बिहारी का काव्य चित्रांकन की दृष्टि से उत्तम काव्य है। उसमे वह सभी गुण मौजूद हैं जो शब्दों के माध्यम से ही एक चित्र की निर्मिति कर देता है। भाव-व्यंजक चेष्टाएँ, क्रियाएँ, भंगिमाएँ सभी चित्र को साकार करने का माध्यम इस काव्य में बने हैं। जिस प्रकार किसी भी साहित्यकार के काव्य को उसका युग और व्यक्तिगत परिवेश बहुत-कुछ प्रभावित करता है। इसके कारण ही उसके व्यक्तित्व को आकर मिलता है, और वही है जो कृतित्व में भी साकार होता है, कुछ ऐसा ही कवि बिहारी का साहित्य भी है। बिहारी मध्यकालीन समय अर्थात् 16वीं-17वीं शताब्दी के मुग़लकालीन समय में सक्रिय रहे। यह वह समय था जिस समय पूरा समाज राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से तो भारी उथल-पुथल का रहा किन्तु ऐसे समय में भी एकमात्र कला ही अपने उत्कर्ष पर पहुंची। चित्रकला, काव्यकला आदि सभी कलाओं को मुगलशासन में जो संरक्षण प्राप्त हुआ, उससे सभी कलाकार कलाओं के निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए, उन्हीं मध्यकालीन कवियों में से एक कवि बिहारी भी रहे जिन्होंने अपने युग विशेष से प्रभावित होकर काव्यकला में चित्रों की माधुरी बिखेरी। उनका काव्यगत विशेष गुण उनके सम्पूर्ण ज्ञान और जीवन के उस अनुभव से उत्पन्न हुआ है जो उन्होंने अपने अनुभव और अध्ययन जगत से अर्जित किया था। 'कल्पना की समाहारशक्ति' के साथ 'भाषा की समासशक्ति' का प्रयोग कर दोहे जैसे छोटे छंद में बिहारी ने अनेक चित्रों को अपने काव्य में साकार कर दिया, इसे ही कुछ मध्यकालीन और आधुनिककालीन चित्रकारों ने कागज व कपड़े पर रंगों के माध्यम से उतारकर चित्रकला की प्रगति का माध्यम बनाया।

चित्रांकन की विविध शैलियाँ भी इस समय में अपने स्थान और परिवेशगत विशेष प्रभाव से अनुप्राणित होकर प्रकाश में आयी। तत्कालीन मुग़ल शैली तथा राजस्थान और

पहाड़ों में प्रचलित मेवाड़, जयपुर, किशनगढ़, काँगड़ा, गुलेर, बसोहली, चम्बा आदि शैलियों ने एक ओर बिहारी को प्रभावित कर काव्य में चित्रों का संयोजन कराया तो दूसरी ओर उनके काव्य में काव्यचित्रों से प्रभावित होकर चित्रकारों ने काव्य में निर्मित उन चित्रों को कागज पर उतारा। इस अर्थ में कहा जाए तो दोनों ने ही एक-दूसरे को गहरा प्रभावित किया, यही कारण है कि बिहारी के काव्य वर्णन में कहीं राजस्थानी शैली के 'अनियारे दीर्घ नेत्र, लहंगा-चोली, रंगसंयोजन में लालिमा' वर्णन का प्रभाव दृष्टिगत होता है तो कहीं मुग़ल शैली के 'महीन रेखाओं और अलंकृत सज्जा पूर्ण' चित्रों का।

जिस चित्रांकन का सामान्य अर्थ कागज या कपड़े पर रंगों के माध्यम से चित्र अंकित करना रहा था उसे बिहारी ने कलम तथा शब्दों के माध्यम से अपने काव्य में साकार कर काव्य और चित्र के प्राचीन सम्बन्ध को उजागर किया। काव्य और चित्र के इस सम्बन्ध को विभिन्न विद्वान मानते अवश्य आये हैं, परन्तु इस दृष्टि से साहित्यकारों की रचनाओं को देखने का प्रयास बहुत ही कम किया गया है। खासकर उन रीतिकालीन कवियों को इस दृष्टि से देखने का प्रयास तो नहीं ही किया गया जिन्होंने कला को पूर्णत: कला के अर्थ में ही लिया।

बिहारी ने शब्द सौष्ठव, अर्थ सौष्ठव एवं रस निष्पत्ति का अप्रतिम प्रयोग कर उनके लिए प्रयुक्त होने वाली उक्ति 'गागर में सागर भरने' को भी अपने काव्य के माध्यम से चरितार्थ कर दिया है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें स्वत: ही अपना आलोक सभी में विकीर्ण कर देती है इसी प्रकार, कवि बिहारी का काव्य भी स्वत: अपने आलोक को फैला रहा है। वह पूरे रीतिकालीन साहित्य का झंडा उठाकर काव्य में चित्रांकन के माध्यम से अगुआ बनकर प्रकाश विकीर्ण कर रहा है।

कविवर बिहारी के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत तक उनके जीवन तथा काव्य के बहुत कुछ अंश विवादास्पद बने रहें हैं। उनके काव्य को भी अनेकानेक दृष्टियों यथा- प्रेम, ऊहात्मकता, नारी-चित्रण, सामाजिकता आदि में देखने का प्रयास किया गया है, परन्तु उनके काव्य में चित्रांकन की क्षमता को लगभग सभी विद्वानों द्वारा सहमति होते हुए भी इस दृष्टि से बिहारी पर कोई स्वतंत्र विचार कार्य मेरी दृष्टि में अब तक नहीं हो पाया है। आज के समय में काव्य और कला के सम्बन्ध की आवश्यकता बनी हुई है, क्योंकि आज काव्य मात्र काव्य बनता जा रहा है, उसमें भावों के साथ भंगिमाओं, चेष्टाओं तथा क्रियाओं के उस चित्रांकन वर्णन का लोप होता जा रहा है, जिसके महत्त्व और उपस्थिति को होरेस, प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ल आदि सभी विद्वानों तक ने काव्य में स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में बिहारी के काव्य में चित्रांकन की क्षमता और उसके विविध आयामों को दिखाने के प्रयास से एक ओर उन सभी रीतिकालीन कवियों को एक नयी दृष्टि से देख पाने और उनके महत्त्व को समझ पाने की ओर प्रयास का आधार निर्मित हो सकेगा जिन्हें कई आरोपों के कारण या तो महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता या उनका मात्र श्रृंगारी या प्रकृति वर्णन के आधार पर ही अध्ययन किया जाता है और दूसरा आज के समय में कवि बिहारी के माध्यम से काव्य में चित्र की उपस्थिति की महत्ता और वर्तमान में उसकी उपयोगिता के भी संकेत सूत्र इस शोध में मिल सकते हैं।

अपने इस लघु शोध प्रबंध में मैंने बिहारी के काव्य में वर्णित भाव-भंगिमाओं, क्रियागत चेष्टाओं आदि में अभिव्यक्त चित्रांकन और उसके विविध आयामों की खोज का प्रयास किया है। इसी क्रम में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि बिहारी के काव्य में चित्रांकन का स्वरुप विविध पक्षीय है। स्थिर और गतिशील दोनों ही प्रकार के चित्रों का संगम बिहारी के काव्य में हुआ है। बिहारी की यह चित्रांकन क्षमता गतिशील चित्रों में एक अलबम की तरह उभरकर आती है जो कि उनके स्थिर चित्रों में उतनी साकार नहीं हो पाई है। मेरे शोध प्रबंध में

मैंने उनके जिन गतिशील चित्रों पर बने स्थिर रंग चित्रों को उजागर किया है उनमें समय तथा सीमा की बाध्यता तो अवश्य होनी ही थी, परन्तु फिर भी एक ही चित्र में विविध दृश्यों के द्वारा बिहारी के काव्य के एक-एक सम्पूर्ण चित्र को आकार देने का स्तुत्य प्रयास भी कई चित्रकारों ने किया है। बिहारी के काव्य के आधार पर मेवाड़, गुलेर, काँगड़ा, जयपुर आदि शैलियों में जो चित्र निर्मित हुए हैं उनसे भी बिहारी के काव्य में उस चित्रांकन पक्ष का प्रमाण मिलता है जो कवि बिहारी को चित्रकार बिहारी बना देता है। बिहारी के इन काव्यचित्रों के पढ़ते ही गंभीर पाठक के मानस में वह आकर ले लेता है।

अतः शब्द और कलम की ताकत से 'कल्पना की समाहारशक्ति और भाषा की समासशक्ति' के माध्यम से बिहारी ने काव्य में चित्रांकन का वह कार्य कर दिखाया है जो चित्रकार चित्र पर रंगों तथा तूलिका के माध्यम से करता है। कविवर बिहारी द्वारा काव्य में चित्रांकन का यह अक्षुण्ण प्रयास भविष्य के लिए स्मरणीय तथा वर्तमान समय के काव्य के लिए मार्गदर्शक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ :

- 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी - रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008.

सहायक ग्रन्थ :

- उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013.
- ओझा, सीमा (सं.); भारतीय कला उद्भव और विकास; प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2015.
- किशोरीलाल; बिहारी काव्य की उपलब्धियाँ; साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड, के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद; संस्करण: 1975.
- गुप्त, गणपतिचन्द्र; हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास(प्रथम खण्ड); लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 1964.
- गैरोला, वाचस्पति; भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008.

- जनेश्वर प्रसाद; रीतिकालीन कलाएँ और युग जीवन; प्रयाग प्रकाशन, 164 ए, त्रिपाठी कालोनी, सोहबतियाबाग, इलाहाबाद; संस्करण: 1990.
- जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976.
- तिवारी, रमाशंकर; बिहारी का काव्य-लालित्य; ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर-12; संस्करण: 1970.
- दास, रायकृष्ण; भारत की चित्रकला; भारत-दर्पण ग्रंथमाला, प्रकाशक तथा विक्रेता भारती भण्डार, इलाहाबाद; संस्करण: 1996.
- दुबे, श्यामसुंदर; बिहारी सतसई; प्रकाशन विभाग, नयी दिल्ली; संस्करण: 1998.
- नगेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (षष्ठ भाग); नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; संस्करण: प्रथम.
- नगेन्द्र; हरदयाल; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5, नोएडा 201301; संस्करण: 2012.
- नारायण, गुरुदेव; बिहारी: एक नव्य बोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979.
- प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016.
- प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य; दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक- 124001.

- माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, एस-11, एस.जी.एम हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर; संस्करण: 2017.
- मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद; हिंदी साहित्य का अतीत(भाग-2); वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2006.
- मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद; गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983 वि.
- यादव, राजकिशोर सिंह; बिहारी की काव्य-कला.
- रमेशचन्द्र; बिहारी: व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 1974.
- रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973.
- वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; वर्मा, संगीता; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006.
- शर्मा, पण्डित पदमसिंह; बिहारी की सतसई; काशीनाथ शर्मा प्रकाशक, काव्यकुटीर नायकनगला, बिजनौर; संस्करण: 1991 वि०.
- शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ - 250001; संस्करण: 2017.
- शर्मा, हरवंशलाल; शास्त्री, परमानन्द; बिहारी और उनका साहित्य; भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ.

- शील, ईश्वरदत्त; हिंदी साहित्य का मध्यकाल; गरिमा प्रकाशन, कानपुर 208021, भारत; संस्करण: 2013.
- शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008.
- शुक्ल, रामचन्द्र; कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदस टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ; संस्करण: 1974.
- सिंह, प्रभाकर (सं.); रीतिकाव्य मूल्यांकन के नये आयाम; लोकभारती प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2016.
- सिन्हा, रणवीर सिंह; कविवर बिहारीलाल और उनका युग.
- सिन्हा, हरेन्द्र प्रताप; बिहारी सतसई का मूल्यांकन; स्मृति प्रकाशन, 61, महाजनी टोला, इलाहाबाद- 3; संस्करण: 1971.
- सिलाकारी, पं. लोकनाथ द्विवेदी; बिहारी-दर्शन; राष्ट्रीय प्रकाशन-मण्डल, मछुआटोली, पटना; संस्करण: संवत् 2007.

पत्र-पत्रिकाएँ :

- झा, विमल (सं.); पुस्तक - वार्ता; महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा- 442001; अंक- मई-जून, 2017.
- तिवारी, कपिल (सं.); चौमासा; आदिवासी लोककला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति, भोपाल; अंक- जुलाई-अक्टूबर, 2002.

शब्दकोश :

- प्रसाद, कालिका (सं.); सहाय , राजवल्लभ; श्रीवास्तव, मुकुन्दीलाल; बृहत हिंदी कोश; ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी; संस्करण : 1984.

विश्वकोश :

- वर्मा, श्याम बहादुर; वर्मा, मधु; विश्व सूक्ति कोश ; प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नयी दिल्ली- 110002 ; संस्करण : 2006.

वेबसाइट :

- **http://www.hindi2dictionary.com/chitrankan-meaning-eng.html**
- **https://shabdkosh.raftaar.in/Meaning-of-%E0%A4%9A%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%A8-in-Hindi**